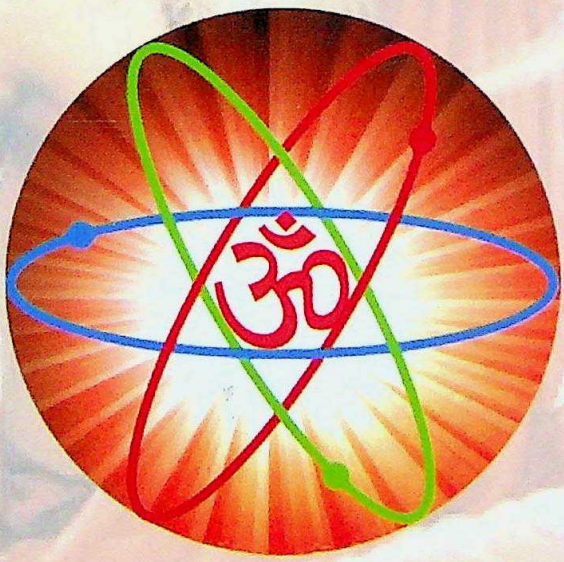
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

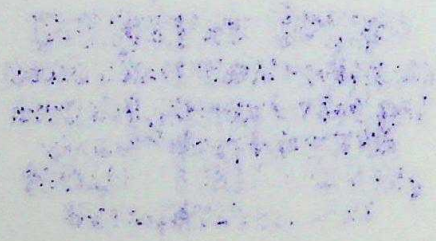
प्रकाश

विज्ञान और विज्ञान



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
167980



CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान और विज्ञान

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821469
Web.: aarshsahitya.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शाश्वत संस्कृति परिषद् का उद्देश्य

विशुद्ध भारतीय तत्त्वदर्शन पर सम्यक् गवेषणा करना तथा उसका प्रचार करना एवं उसके आधार पर राष्ट्र के सम्मुख प्रस्तुत सभी समस्याओं का सुलझाव प्रस्तुत करना।

परिषद् के प्रकाशन—

ब्रह्मसूत्र सरल सुबोध-भाषा-भाष्य
सांख्य दर्शन सरल सुबोध-भाषा-भाष्य
न्याय-दर्शन सरल सुबोध-भाषा भाष्य
श्रीमद्भगवद्गीता एक अध्ययन
इतिहास में भारतीय परम्पराएं (अप्राप्य)
विज्ञान और विज्ञान
सायंस और वेद
विश्वेदेवाः
धर्म तथा समाजवाद
प्रजातांत्रिक समाजवाद
न्याय-प्रवेशिका
नव-दर्शन परिचय
भाव और भावना
भाग्य चक्र
मैं हिन्दू हूं
यजुर्वेद और गृहस्थ धर्म
वर्तमान दुर्व्यवस्था का समाधान—हिन्दू राष्ट्र
मुण्डक-माण्डूक्य उपनिषद् (भाष्य)
ईश केन कठ उपनिषद् (भाष्य)
सृष्टि-रचना
वेद और वैदिक काल
हिन्दुत्व की यात्रा

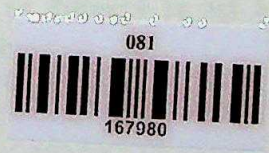
CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विज्ञान और विज्ञान



लेखक
गुरुदत्त
एम. एस-सी.



167980

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली-110005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
089.9143
GUR-V

पुस्तक	:	विज्ञान और विज्ञान
लेखक	:	गुरुदत्त
संस्करण	:	2012
सर्वाधिकार	:	प्रकाशक
प्रकाशक	:	हिन्दी साहित्य सदन, 2 बी.डी. चैम्बर्स 10/54 देशबन्धु गुप्ता रोड, करोलबाग, नई दिल्ली-110005
E-mail	:	indiabooks@rediffmail.com
मूल्य	:	60/-
मुद्रक	:	गोयल इन्टरप्राईजिस, दरियागंज दिल्ली-110002

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निवेदन

'विज्ञान और विज्ञान' अपने पाठकों को समर्पित करते हुए हमें अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है।

विषय की दुरूहता तथा महत्ता को देखते हुए, इतना कहते हुए हमें गर्व अनुभव हो रहा है कि यह एक अनुपम भेंट है इस विषय में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए।

आधुनिक विज्ञान तथा प्राचीन भारतीय विज्ञान—इसका तुलनात्मक अध्ययन अभी तक विद्वानों से अछूता था—इसमें जहाँ कई अन्य कारण थे, वहाँ यह भी एक कारण था कि प्रायः भारतीय विद्वान आधुनिक विज्ञान से अनभिज्ञ रहे हैं तथा आधुनिक वैज्ञानिक भारतीय विज्ञान एवं दर्शन को हेय दृष्टि से देखते रहे हैं।

श्री गुरुदत्त की यह विशेषता है कि जहाँ वे आधुनिक विज्ञान की अद्यतन जानकारी से परिचित हैं वहाँ भारतीय दर्शन तथा प्राचीन भारतीय विज्ञान के विषय में उनका गम्भीर अध्ययन है।

यह तुलनात्मक अध्ययन निश्चित ही विज्ञान के हर विद्यार्थी के लिये उपयोगी सिद्ध होगा तथा हमें विश्वास है कि आधुनिक वैज्ञानिक यदि सही दृष्टिकोण को स्वीकार कर अपनी खोज में लीन रहे तो परिणाम अत्यन्त शुभ होगा।

हमें आशा है पाठकगण तथा विद्वज्जन इस अध्ययन से लाभ उठायेंगे—

—अशोक कौशिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुक्रम

प्राक्कथन ९-१८
विज्ञान और तकनीकी ज्ञान; अनुसंधान के उपाय ।
प्रथम अध्याय १९-३१
सत्य ज्ञान की उपलब्धि ।
द्वितीय अध्याय ३२-५६
जगत्-रचना की भूमिका; जगत्-रचना की प्रक्रिया; जगत्-रचना का काल और स्थान; पदार्थ विषयक भारतीय विज्ञान ।
तृतीय अध्याय ५७-७४
प्राणी रचना—पाश्चात्य मत; भारतीय मत के अनुसार प्राणी-सृष्टि ।
चतुर्थ अध्याय ७५-१०८
विकासवाद; विकासवाद की विवेचना; मनुष्य-सृष्टि के विषय में भारतीय मत ।
पंचम अध्याय १०९-१२९
जगत् के मूल तत्व; मूल तत्वों की सिद्धि; जीवात्मा; प्रकृति ।
षष्ठ अध्याय १३०-१४८
ज्ञान, भाषा और लिपि; वेद-ज्ञान; वाणी; लिपि ।
सप्तम अध्याय १४९-१५२
गणित ।
उपसंहार १५३-१५६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

: १ :

'विज्ञान और विज्ञान' से हमारा अभिप्राय है भारतीय विज्ञान और पाश्चात्य विज्ञान। इसका अर्थ प्राचीन विज्ञान और अर्वाचीन विज्ञान भी है।

क्या प्राचीन काल में भी किसी प्रकार का विज्ञान था ? अन्य देशों की बात तो हम नहीं जानते, किन्तु भारतवर्ष में विज्ञान नाम प्रचलित था और उसमें बहुत उन्नति भी हुई थी।

भगवद्गीता में, जो महाभारत का एक अंश ही है, विज्ञान शब्द का उल्लेख है और वहाँ इसकी रूप-रेखा भी वर्णित है। वहाँ लिखा है :—

ज्ञानं तेऽहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः ।
यज्ज्ञात्वा नेह भूयोऽन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते ।।
भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च ।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा ।।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम् ।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत् ।।
एतद्योनीनि भूतानि सर्वाणीत्युपधारय ।
अहं कृत्स्नस्य जगतः प्रभवः प्रलयस्तथा ।।
मत्तः परतरं नान्यत्किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।

(भ० गी० ७-२, ४, ५, ६, ७)

ज्ञान और विज्ञान की यह बहुत ही संक्षिप्त परिभाषा है। श्लोकों का भावार्थ है—ब्रह्म के समग्र स्वरूप को जानने के लिये ज्ञान-विज्ञान को जानना चाहिये। वह मैं बताता हूँ। इसे (अर्थात् ज्ञान और विज्ञान को) जान लेने के उपरान्त अन्य कुछ जानने योग्य नहीं रह जाता।

प्रकृति अष्टधा है जिसमें आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी—ये पंच महाभूत हैं। इनके साथ मन, अहंकार और बुद्धि हैं। यह अपरा (जो दूर नहीं अर्थात् प्रत्यक्ष ही है अर्थात् जड़) कहलाती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त जीव (जीवात्मा) है। इन दोनों से सम्पूर्ण जगत् धारण किया जाता है। धारण किये जाने का अभिप्राय है कि इनके संयोग से जगत् बना है। इन दोनों (जड़-प्रकृति और जीवात्मा) से जगत् बन गया समझना चाहिये। इनके अतिरिक्त परमात्मा जगत् को उत्पन्न और इसका पालन करने वाला है।

यह ही सब कुछ इस जगत् में है। इसकी सामान्य और विशेष जानकारी को ज्ञान और विज्ञान कहा गया है।

विशेष ज्ञान से अभिप्राय है जगत् के मूल का ज्ञान। यह जगत् कहाँ से उत्पन्न हुआ ? जिससे इसको उत्पत्ति हुई उसका स्वरूप, उसके लक्षण और उसका स्वभाव क्या है ?

प्रकृति के आठ रूपों को अपरा कहा है। इससे स्पष्ट है कि यह जगत् का मूल नहीं है। मूल तो वह ही हो सकता है जो परे अर्थात् इससे सूक्ष्म है।

प्रश्न है कि वह सूक्ष्म क्या है और उसका उक्त कथन में क्यों वर्णन नहीं किया ? वहाँ जीवात्मा और परमात्मा का कथन तो है परन्तु प्रकृति का कथन क्यों नहीं ?

इसमें कारण यह प्रतीत होता है कि इस चराचर दृश्य-जगत् का प्रकृति, जो पूर्वोक्त आठ रूपों की मूल है, स्वयं भाग नहीं है। प्रकृति अपने मूल रूप में जगत् का अंग नहीं। इस पर भी वह जगत् के पदार्थों के निर्माण में कारण है। जगत् में प्रकृति, पूर्व में कहे आठ रूपों में ही पाई जाती है।

परमात्मा और जीवात्मा तो निमित्त कारण और भोक्ता के रूप में हैं। दृश्य जगत् में जीवात्मा प्राणियों में सक्रिय सहयोग दे रहा दिखाई देता है और परमात्मा इसकी रचना और प्रलय में सक्रिय भाग लेता है। अतः परमात्मा, जीवात्मा और अष्टधा प्रकृति इस जगत् में विद्यमान है। यही उपरिलिखित भगवद्गीता के श्लोकों में कहा गया है। इसका यह अभिप्राय नहीं कि मूल प्रकृति है ही नहीं। भगवद्गीता का रचयिता मूल प्रकृति के अस्तित्व को मानता है। एक अन्य स्थान पर वह कहता है—

प्रकृतिं पुरुषं चैव विद्ध्यनादी उभावपि। (भ० गी० १३-१९)

अर्थात्—प्रकृति और पुरुष (जीवात्मा) इन दोनों को अनादि जान।

अतः ज्ञान और विज्ञान से अभिप्राय है जगत् का सामान्य ज्ञान और विशेष ज्ञान। सामान्य ज्ञान तो वह है जो दृश्य पदार्थों का ज्ञान है और इनमें अदृश्य, अप्रत्यक्ष दूसरे शब्दों में अव्यक्त पदार्थों के ज्ञान को विज्ञान के नाम से प्रकट किया है।

अप्रत्यक्ष अर्थात् अव्यक्त के अर्थ हम आगे यथास्थान लिखेंगे। यहाँ हमारा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतना बताने से ही अभिप्राय है कि ज्ञान और विज्ञान इस जगत् के पदार्थों की सामान्य और विशेष जानकारी को कहते हैं।

स्वाभाविक रूप में प्रकृति के आठ रूप ही प्रत्यक्ष के अन्तर्गत आते हैं। इनके गुण, कर्म और स्वभाव का वर्णन ही ज्ञान है। साथ ही इन आठ रूपों के निर्माण करने की परमात्मा की क्रिया को भी ज्ञान में सम्मिलित किया है। जीवात्मा जब तक शरीर में रहता हुआ जगत् में क्रियाशील रहता है, वह भी ज्ञान के क्षेत्र में माना जाता है। प्राणी के रूप में उसका कार्य, ज्ञान में आता है। परन्तु ज्यों ही वह शरीर से पृथक् होता है तब उसका वर्णन विज्ञान में आयेगा। इसी प्रकार परमात्मा का निर्मल, शुद्ध, बुद्ध, नित्य स्वरूप और स्वभाव विज्ञान में वर्णन किया गया है।

संक्षेप में दृश्य-जगत् का गुण, कर्म, स्वभाव, इसमें सहयोग देने वाले पदार्थों के सहयोग की विधि ज्ञान के अन्तर्गत ली जाती है, परन्तु कार्य-जगत् के मूल पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभाव, कार्य-जगत् से पृथक्, विज्ञान में वर्णित हैं। ज्ञान का विस्तृत वर्णन सांख्य और वैशेषिक दर्शनों में है और मूल तत्वों का वर्णन विशेष रूप में ब्रह्मसूत्रों (वेदान्त दर्शन) में दिया गया है।

जो इन दर्शनशास्त्रों में लिखा है वह सब कुछ तो यहाँ स्थानाभाव के कारण लिखा नहीं जा सकता। अतः अति संक्षेप में ही इनका वर्णन यहां किया जा रहा है।

वर्तमान विज्ञान का क्षेत्र भी अति विशाल है। उसके भी कुछ एक अंशों को लेकर उनके समानान्तर भारतीय विज्ञान के अंशों को रखकर तुलनात्मक वर्णन हम करेंगे।

ज्ञान-विज्ञान के पूर्ण विषय पर तो कई बृहद्काय ग्रन्थ लिखकर भी कदाचित् विषय के साथ पूर्ण न्याय न किया जा सके। अतएव कुछ एक विषयों को लेकर, उनका संक्षिप्त तुलनात्मक वर्णन ही यहाँ देना सम्भव है।

एक बात यहाँ स्पष्ट करनी आवश्यक है। हम दोनों, अर्थात् भारतीय ज्ञान-विज्ञान और पाश्चात्य विज्ञान में विरोध नहीं देखते। जहाँ कहीं भी विरोध प्रकट हो रहा है वह वैज्ञानिकों और भारतीय तत्वदर्शियों में भ्रांति के कारण है। सत्य तो एक ही है और जहाँ तक ज्ञान-विज्ञान का सम्बन्ध है, वह सत्य का निरूपण ही है। इस कारण जो सत्य, ज्ञान और विज्ञान है, वे दो हो ही नहीं सकते।

इस पर भी यह तो स्पष्ट ही है कि कुछ किसी में छूट गया है। उस छूट गये अंश में वह ज्ञान-विज्ञान अधूरा है। इस विषय में भी हम अपना मत यहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिखने का यत्न करेंगे।

हमने ऊपर भारतीय ज्ञान-विज्ञान की रूप रेखा लिखी है। इसी प्रकार पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान की भी संक्षिप्त रूप-रेखा लिख दें तो उपयुक्त होगा।

पाश्चात्य विज्ञान, जिसे आधुनिक-विज्ञान भी कहा जाता है, वह साइंस (science) के नाम से विख्यात है। साइंस शब्द के मूल अर्थ ज्ञान ही हैं। इस शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन के शब्द (scientia) से है जिसका अर्थ ज्ञान है।

साइंस के ज्ञाता साइंस के लक्षण इस प्रकार करते हैं—

The Latin word scientia meant 'knowledge,' but the modern usage covers only certain kinds of knowledge whose area however, is now so vast that no man can grasp more than a fraction of them. Moreover, 'scientific' knowledge is extremely diverse, extending from subatomic reactions to mental processes; from mathematical laws of thermo-dynamics to the economics of race relations; from the births and deaths of stars to the migration of birds; from the study of ultra-microscopic viruses to that of extra galactic nebulas; from the rise and dissolution of cultures and of crystals to the rise and dissolution of atoms and universes. It includes both knowledge of the workings of living bodies. and knowledge of thc laws of thought, together with the nature of their disturbances.

Ency. Brit. (1967), vol. 20. p-7

अर्थात्—लेटिन भाषा के शब्द 'सांयंशिया' का अर्थ ज्ञान है। इस शब्द का वर्तमान काल में प्रयोग कुछ ऐसे ज्ञान पर होता है जिसका क्षेत्र इतना विस्तृत है कि कोई भी व्यक्ति उसके एक अंश से अधिक को समझ नहीं सकता। साथ ही साइंस विषयक ज्ञान नानाविध है। यह अन्तर-अणु विषयों से लेकर मानसिक क्रियाओं तक फैला हुआ है। 'थर्मोडायनैमिक' (अणुओं के चलन) के गणित के नियमों से लेकर वंशों के आर्थिक सम्बन्धों तक, नक्षत्रों के मरण-जन्म से लेकर पक्षियों के स्थानान्तरण तक, अति क्षुद्रबीन में देखे जाने वाले 'वायरसों' (एक प्रकार के अति सूक्ष्म जीव) से लेकर महान् 'गेलेक्टिक नेबुलाओं (आकाश गंगा तथा हिरण्यगर्भों) तक, संस्कृतियों और रवेदार कणों के उत्थान और पतन से लेकर अणुओं और ब्रह्माण्डों के निर्माण और विघटन तक फैला हुआ है। इसमें प्राणियों के कार्य के ज्ञान और विचार करने के नियमों और उनमें विघ्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बाधाओं का ज्ञान भी सम्मिलित है।

साइंस के इन लक्षणों से भारतीय ज्ञान-विज्ञान की तुलना की जा सकती है। यदि कुछ भी ध्यान से देखा जाये तो पता चलेगा कि भारतीय ज्ञान-विज्ञान का लक्षण यद्यपि संक्षिप्त है, तो भी वह अधिक व्यापक है और उसमें वर्तमान विज्ञान के लक्षणों की भाँति अस्पष्टता नहीं। यदि यह कहा जाये कि केवल मात्र पाठकों को भयभीत करने के लिए किसी रेगिस्तान के रेत के कणों की गणना आरम्भ कर देने के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं।

जो कुछ साइंस की व्याख्या में ऊपर लिखा गया है वह एक शब्द में लिखा जा सकता है। वह है कार्य-जगत्। कार्य-जगत् की व्याख्या ही साइंस है। कार्य-जगत् दृश्यमान् जगत् है।

यही बात गीता में कुछ व्याख्या से कही गई है। वह अधिक अर्थयुक्त और व्यापक अर्थ रखती है। परा और अपरा के ज्ञान-विज्ञान को साइंस कहते हैं। 'साइंस' में इतनी कमी है कि वह कार्य जगत् के मूल तक पहुँची प्रतीत नहीं होती। वह कार्य जगत् के गुंजल में ही अभी तक उलझी हुई है। वर्तमान वैज्ञानिक मूल के विषय में कुछ न जानते हुए भी अपने ज्ञान को पूर्ण मानते हैं। जब से वर्तमान विज्ञान का आविर्भाव हुआ है तब से ही वह कार्य-जगत् के मूल तत्व की अवहेलना करता हुआ भी अपने ज्ञान को पूर्ण मानता आया है। वर्तमान विज्ञान का जन्मदाता अरस्तु (Aristotle) यह मानता था कि प्रकृति ही सब कुछ है और यह शून्य से उत्पन्न हुई है।

भाग्य की विडम्बना है कि वर्तमात विज्ञान अरस्तु के काल से बहुत उन्नत हो जाने पर भी, अभी तक कार्य-जगत् के मूल में शून्य के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं पा सका।

अरस्तु के पद-चिह्नों पर चलता हुआ वर्तमान विज्ञान वृक्ष, पक्षी, प्राणी, नदी, नाले और पहाड़, सागर तथा सूर्य, चन्द्र से अपनी खोज आरम्भ करता है और सत्य की ओर जा रहा है। इसके विपरीत ऐसा प्रतीत होता है कि किसी-न किसी प्रकार भारतीय वैज्ञानिक उस मूल सत्य को देख पाया है और उससे पग-पग पर निरीक्षण करता हुआ कार्य-जगत् की ओर अग्रसर हुआ है।

भारतीय वैज्ञानिक अपने लक्ष्य की ओर पहुंचे अथवा नहीं, वह हम इस पुस्तिका के अन्त में बताने का यत्न करेंगे। किन्तु इतना तो स्पष्ट है कि वर्तमान काल के वैज्ञानिक कार्य-जगत् के मूल तक नहीं पहुँचे। वे अभी यह भी नहीं जान सके कि इस सब प्रपच का अन्तिम मूल क्या है और यह जगत् क्यों बना है?

वर्तमान वैज्ञानिकों का कहना है कि ऐटम के कभी बनने वाले टुकड़ों का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संयुक्त द्रव्यमान टूटने वाले ऐटम के द्रव्यमान से कम होता है। उस समय वह अंश ताप (heat) और प्रकाश (light) में बदलता-सा दृष्टिगोचर होता है और यह माना जाता है कि वह द्रव्यमान प्रकाश और ताप में परिवर्तित हो जाता है। अतः यह कार्य-जगत् ताप और प्रकाश के अतिरिक्त कुछ नहीं।

यह है गली का वह अवरुद्ध छोर जहाँ पहुँचकर आज का वैज्ञानिक हताश हो बैठा है। आगे जाने का इसमें न तो साहस है और न ही इच्छा।

साइंस शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन शब्द (scientia) शब्द में लगाई जाती है। इस व्युत्पत्ति को ढूंढने वाले, कदाचित् भाषा के इतिहास को नहीं जानते। इसी कारण वे लैटिन से पूर्व की ओर उन्मुख नहीं हो सके।

वैदिक भाषा के जानने वाले यह मानते हैं कि वैदिक भाषा सबसे पुरानी भाषा है। वह अति सुन्दर और भावपूर्ण है। इस विषय पर पृथक् अध्याय में लिखेंगे। यहां इतना लिखना पर्याप्त होगा कि मैक्समूलर जैसा विदेशी एवं भारत विरोधी व्यक्ति भी वैदिक भाषा के विषय में लिखता है कि वह भाषा अति प्रबल और भावपूर्ण थी।

वैदिक भाषा में एक शब्द है सांख्य। उसका अर्थ है ज्ञान। हमारा यह विचारित मत है कि लैटिन भाषा का 'scientia' और वर्तमान अंग्रेजी का साइंस शब्द 'सांख्य' से ही निकले हैं।

गीता के पूर्वोक्त श्लोकों में जो विज्ञान का स्वरूप हमने वर्णन किया है, वह वेदों में भी है। इसकी व्याख्या सांख्य दर्शन और वैशेषिक दर्शन में है।

गीता कहती है कि पूर्ण कार्य-जगत् दस पदार्थों से बना है। प्रकृति के आठ रूप और जीवात्मा तथा परमात्मा। जीवात्मा और परमात्मा तो मूल पदार्थ हैं। प्रकृति के आठ रूप मूल प्रकृति का परिणाम हैं।

उक्त 'एन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के उद्धरण में लिखा है कि साइंस में विषयों की संख्या इतनी अधिक है कि कोई एक मनुष्य पूर्ण साइंस का ज्ञान प्राप्त नहीं कर सकता। हमारे विचार में यह वृक्ष के मूल को छोड़ पत्ते और शाखाओं को गिनने के तुल्य है।

वृक्ष का ज्ञान उसके मूल और बीज से होता है। उसे छोड़कर पत्तों और शाखाओं की गिनती करने से तो विभ्रम ही उत्पन्न होता है।

हमारा विचार है कि जहाँ तक विशुद्ध विज्ञान (pure science) का सम्बन्ध है; भारतीय विज्ञान की पहुंच वर्तमान विज्ञान से कम नहीं रही। यदि यह कहा जाय कि भारतीय विज्ञान वतमान विज्ञान से अधिक गहराई तक पहुँचा हुआ है तो अधिक सत्य होगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि भारतीय विचारानुसार सब सत्य विद्याओं का मूल वेद में है। यह वेद में ही लिखा है और महर्षि स्वामी दयानन्द ऋग्वेद के अपने भाष्य के प्राक्कथन में इस प्रकार लिखते हैं—

ऋग्भिः स्तुवन्तीत्युक्तत्वाद्विद्वांस उक्तपूर्वं वेदार्थज्ञानसाहित्यपठनपुरःसर-मृग्वेदमधीत्य तत्रस्थैर्मन्त्रैरीश्वरमारभ्य भूमिपर्यन्तानां पदार्थानां गुणान् यथावद्वि-दित्वैते कार्येषूपकृतये मतिं जनयन्ति। ऋचन्ति स्तुवन्ति पदार्थानां गुणकर्मस्व-भावाननया सा ऋक्, ऋक् चासौ वेदश्चर्ग्वेदः।

(ऋग्वेद भाष्यारम्भः—स्वा० दयानन्द)

(ऋग्वेद से सब पदार्थों की स्तुति होती है। अर्थात् ईश्वर ने, जिसने सब पदार्थों के गुणों का प्रकाश किया है। इसलिए विद्वान् लोगों को चाहिये कि ऋग्वेद को प्रथम पढ़कर उन मन्त्रों से ईश्वर से लेकर पृथ्वी पर्यन्त सब पदार्थों को यथा-वत् जानकर संसार में उपकार के लिए यत्न करें। ऋग्वेद शब्द का अर्थ यह है कि जिससे सब पदार्थों के गुणों और स्वभाव का वर्णन किया जाये। ऋक् और वेद अर्थात् जो यह सत्य सत्य-ज्ञान का हेतु है, इन दो शब्दों से ऋग्वेद शब्द बनता है।)

इसका अभिप्राय यह है कि ऋक् में स्तुति कही गयी है। ऋचायें पदार्थों के गुण, कर्म और स्वभाव का वर्णन करती हैं। ऋक् ईश्वर से लेकर पृथिवी तक सब पदार्थों के गुण, कर्म और स्वाभाव का नाम है और इनके ज्ञान को ऋग्वेद कहते हैं।

यही ज्ञान और विज्ञान है।

: २ :

विज्ञान और तकनीकी ज्ञान (Science & Technology)

हमने पूर्व की कण्डिका में लिखा है कि वर्तमान का विज्ञान भारतीय दृष्टि-कोण से सामान्य ज्ञान ही है। अर्थात् यह कार्य-जगत् का ही वर्णन है। भारतीय दृष्टिकोण से तो विज्ञान कार्य-जगत् के मूल पदार्थों का वर्णन है। इसे वर्तमान युग के वैज्ञानिक या तो अनावश्यक समझकर छोड़े हुए हैं अथवा उन तक अभी इनकी पहुँच नहीं है। दूसरे शब्दों में वर्तमान विज्ञान केवल मात्र प्रकृति के अष्टधा स्वरूप के गुण, कर्म और स्वभाव तक ही सीमित है।

इस पर भी वर्तमान ज्ञान-विज्ञान का, जो भी इसे कहें, बहुत विस्तार हुआ। हैअभिप्राय यह है कि यह विकास 'टैक्नोलॉजी' (तकनीक) में हुआ है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशुद्ध ज्ञान (pure sciences) में बहुत ही कम उन्नति हुई है।

विज्ञान में तो सैद्धान्तिक रूप में बहुत कम प्रगति हुई है। हाँ, विज्ञान के प्रयोग में बहुत उन्नति हुई है। दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि विज्ञान के प्रयोग की कला में विशेष प्रगति हुई है।

प्रकृति के आठ प्रकार के परिणामों के अनेकानेक प्रयोगों का ढंग सीखा गया है और उसका प्रयोग किया गया है। प्रकृति के उन आठ रूपों के अतिरिक्त कुछ भी प्रतीत नहीं किया जा सका।

यह ठीक है कि ज्ञान को भली प्रकार समझे बिना उसका प्रयोग सम्भव नहीं। अतः वर्तमान युग के वैज्ञानिकों ने विशुद्ध विज्ञान को जितना भी समझा है उसका भरपूर प्रयोग किया है। कदाचित् यह प्रयोग सीमा से अधिक हो रहा है। इसके विषय में पुस्तिका के अन्त में, उपसंहार में लिखा गया है।

यहाँ केवल इतना बताने से ही प्रयोजन है कि विज्ञान का प्रयोग (टैक्नोलॉजी) कला कहलाती है। भारतीय वैज्ञानिकों ने, हमारे विचार से, विशुद्ध विज्ञान को कुछ अधिक जानते हुए भी कला में प्रगति नहीं की।

एक उदाहरण दे दें तो अधिक ठीक रहेगा।

पृथिवी का एक धर्म है। वह अन्य वस्तुओं को अपनी ओर आकर्षित करती है। इसे भू-आकर्षण (gravity) कहते हैं।

एक प्रकार की घड़ी बनायी जाती है। इसमें एक भारी गोला एक जंजीर से लटका रहता है। उस गोले के नीचे गिरने को नियमबद्ध करने के लिए उसकी गरारी पर एक खटका लगा रहता है। इससे जंजीर से लटक रहा गोला एक नियमित गति से नीचे गिरता है और इससे जंजीर खिचती है जो घड़ी के कल पुर्जों को चलाती है। इसे ग्रेविटेशनल क्लॉक (gravitational clock) कहा जाता है।

इसमें सिद्धान्त तो यह है कि पृथिवी सब पदार्थों को अपनी ओर खींचती है और कलाकार (technician) ने इस सिद्धान्त का प्रयोग कर घड़ी का निर्माण कर दिया है।

एक अन्य उदाहरण ले सकते हैं।

ऐटम के अस्तित्व, उसके द्रव्यमान, आकार और विस्तार का अनुमान तो विज्ञान है। ऐटम को तोड़ सकना कला (technique) है।

ऐटम पर न्यूट्रोन से बमबारी की जाती है और वह जब टूटता है तो उसमें से प्रकाश और ताप निकलता है। इससे ऐटमबम्ब का निर्माण किया गया है।

ऐटम टूट सकता है; क्योंकि यह छोटे-छोटे टुकड़ों से बना है। यह जानना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो विशुद्ध विज्ञान है, परन्तु इसे तोड़ने का ढंग 'टैक्नोलॉजी' (कला) है। इसके लिये एक प्रकार की भट्टी बनायी गयी है जिसे 'रिऐक्टर' (reactor) कहते हैं। यह भी कला है।

विशुद्ध ज्ञान का अर्थ है इस ब्रह्माण्ड के रहस्यों को समझना। इसमें सन्देह नहीं कि इसमें भारतीय वैज्ञानिकों ने बहुत उन्नति की थी।

यह नहीं कि प्राचीन वैज्ञानिक प्रकृति के रहस्यों का उपयोग करते ही न हों। चिकित्सा शास्त्र में, ज्योतिष ज्ञान में, मन और बुद्धि के विकास में भारतीयों ने बहुत उन्नति की थी। इस उन्नति की झलक आज तक भी विद्यमान है।

इस पर भी विज्ञान में अति उन्नत भारतीय लोग उस विज्ञान के प्रयोग में पिछड़े हुए थे। क्यों? यह ज्ञान-विज्ञान का विषय नहीं, प्रत्युत इतिहास का विषय है। इस कारण इसकी विवेचना इस पुस्तक में नहीं की गई है।

: ३ :

अनुसन्धान के उपाय

कुछ लोग कहते हैं कि भारतीयों के पास ऐसे साधन नहीं थे जिनसे ये जगत् के रहस्य को जान सकते। अतः जो यह कहा जाता है कि भारतीयों को बहुत कुछ पता था, यह सत्य नहीं है।

साधन थे अथवा नहीं थे, यह एक पृथक् प्रश्न है। यह सत्य है कि प्रकृति और जगत् के रहस्यों को भारतीय जानते थे। कुछ एक का वर्णन हम इस पुस्तक में करेंगे। यहाँ उन साधनों का ही वर्णन करेंगे।

प्रायः प्रकृति के रहस्य जानने के लिये बहुत बड़े-बड़े यन्त्रों की आवश्यकता नहीं होती। भाप से देगची के ढकने को हिलता देख भाप में कार्य करने की शक्ति का ज्ञान हो गया और फिर इस ज्ञान से भाप का इन्जन बना और लकड़ी तथा कोयले की शक्ति का प्रयोग करने का ढंग निकल आया। बड़े-बड़े कारखाने और रेलगाड़ियाँ चलने लगीं।

एक गडरिये की लड़की से घास के तिनके के चिपकने से विद्युत के रहस्य का उद्घाटन हुआ। इसी प्रकार उड़ती पतंग को देख हवाई जहाज निर्माण करने का विचार बन गया। इसमें रहस्य यह था कि बहती हवा वस्तुओं को आकाश में उड़ा ले जाती है अर्थात् इसमें वस्तुओं को ऊपर उठाये रखने की सामर्थ्य होती है।

अतः यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो पता चलेगा कि विशुद्ध साइंस को सम-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

झने के लिये प्रायः बहुत ही सरल परीक्षणों की आवश्यकता पड़ी है। परीक्षणों से अधिक परीक्षणों को समझने के लिये मनन (logic) की आवश्यकता रहती है।

प्रकृति ने अपने रहस्य बहुत छुपा कर नहीं रखे। वे तो प्रकृति के मुख पर ही लिखे मिल जाते हैं। हाँ, उनको देखने के लिये आँखों की आवश्यकता होती है और समझने के लिए बुद्धि के प्रयोग की। देखने वालों को बहुत ही सरल-सी घटनाओं से गम्भीर रहस्य प्रकट हो जाते हैं। देखकर उनको समझने के लिये बुद्धि की आवश्यकता होती है। बुद्धि का प्रयोग कर, युक्ति करने को 'लौजिक' कहते हैं। प्रायः पेचीदा परीक्षण तो प्रकृति के सरल रहस्यों को उपयोगी बनाने में आवश्यक होते हैं।

अवलोकन (observation) पहले होता है और उसका अर्थ समझना पीछे की बात है। वास्तव में विज्ञान में उन्नति देखने और समझने से ही सम्बन्ध रखती है और ये दोनों बातें मनुष्य के अपने पास ही होती हैं। इसको बाज़ार से खरीदने के लिये जाना नहीं पड़ता।

ये दोनों साधन भारतीयों के पास थे। यही कारण है कि वे प्रकृति के गूढ़तम रहस्यों को जान सके थे। परन्तु उन रहस्यों को मानवोपकारी कामों में प्रयोग करने के लिए कभी-कभी अति जटिल उपकरणों की आवश्यकता पड़ती है।

इस पुस्तिका में हम जिन विषयों पर भारतीय विज्ञान और वर्तमान विज्ञान में तुलना कर रहे हैं, वे विषय हैं—

(१) सत्य ज्ञान की उपलब्धि।
(२) जगत्-रचना।
(३) प्राणी-रचना।
(४) विकासवाद।
(५) जगत् के मूल तत्व।
(६) ज्ञान, भाषा और लिपि।
(७) गणित।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्याय

सत्य ज्ञान की उपलब्धि

ज्ञान-विज्ञान में क्या भेद है यह हम प्राक्कथन में लिख आये हैं। हमने यह भी बताया है कि वर्तमान युग के अभारतीय विद्वान् विज्ञान के वह अर्थ नहीं लगाते जो भारतीय विद्वान लगाते हैं। भारतीयों की कल्पना का विज्ञान वर्तमान युग के विद्वानों के विचार में नहीं है। कारण यह है कि दोनों की दृष्टि में जगत् के मूल-पदार्थ साइंस के क्षेत्र में आते ही नहीं।

जगत् का मूल किसी प्रकार का पदार्थ है अथवा केवल शक्तिमात्र है, अभी वैज्ञानिक इस विषय में स्थिर मत नहीं। इस कारण भारतीय विद्वानों की कल्पना का विज्ञान उनका विषय नहीं।

अतः जब हम वर्तमान युग के साइंसदानों को वैज्ञानिक लिखते हैं अथवा साइंस को विज्ञान कहते हैं तो वह भारतीय दृष्टिकोण से नहीं, अपितु उनके अपने ही दृष्टिकोण से है।

साइंसदानों के अन्वेषण का विषय केवल अपरा है; इस कारण उनकी जानकारी प्राप्त करने के लिए प्रत्यक्ष प्रमाण सहायक होता है।

दार्शनिक भाषा में उस विषय को जिसके विषय में जानकारी प्राप्त की जानी हो, प्रमा कहते हैं। 'यथार्थानुभवः प्रमा'। सत्य-ज्ञान को प्रमा कहते हैं और 'प्रमा करणं प्रमाणम्' अर्थात् प्रमा (सत्य) के जानने में जो साधन हों, वह प्रमाण कहलाता है।

प्रमाण तीन प्रकार के हैं। सांख्य दर्शन इनको इस प्रकार बताता है :—

द्वयोरेकतरस्य वऽयसन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा तत्साधकतमं यत्तत् त्रिविधं प्रमाणम्॥ (सां० १-८७)

अर्थात्—बुद्धि तथा आत्मा अथवा दोनों में से एक को पूर्व अज्ञात अर्थ का अवधारण हो तो वह प्रमा है। प्रमा को जो सिद्ध करे, वह प्रमाण है। प्रमाण तीन प्रकार के हैं।

हम ज्ञान और विज्ञान की उपलब्धि के साधनों पर विचार कर रहे हैं। दर्शनशास्त्र कहता है कि इनके उपलब्ध करने के तीन उपाय हैं।

इन तीनों अथवा तीनों में से एक व दो से सिद्ध प्रमा, सत्य ज्ञान है। उसको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्ध करने लिये किसी अन्य साधन की आवश्यकता नहीं।

दर्शनाचार्य कपिल लिखते हैं—

तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः ॥ (सां० १-८८)

तीन, दो अथवा एक प्रमाण से सिद्धि हो जाने पर अधिक सिद्धि (प्रमाण) की आवश्यकता नहीं रहती।

वे तीन प्रमाण इस प्रकार हैं—

यत्सम्बद्धं सत् तदाकारोल्लेखि विज्ञानं तत् प्रत्यक्षम् ॥ (सां० १-८९)

जिसके साथ (इन्द्रियों का) सम्बन्ध हो, उसके आकार को धारण कराने वाला अथवा उल्लेख कराने वाला विशेष ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है।

अभिप्राय यह है कि इन्द्रियों द्वारा सम्बन्ध से जिसके आकार (स्वभाव) का ज्ञान हो, वह साक्षात्कार प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाता है।

बड़े-से-बड़े यन्त्र द्वारा भी जो ज्ञान इन्द्रियों को प्राप्त होता है, वह भी प्रत्यक्ष ज्ञान कहलाता है।

पांच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। आंख, नाक, कान, रसना और त्वचा। इनमें से किसी के द्वारा भी प्राप्त ज्ञान को प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं।

दूसरी प्रकार का प्रमाण है :—

प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम् ॥ (सां० १-१००)

नियत (बार-बार परीक्षित) सम्बन्ध दिखायी देने पर, सम्बन्धित का ज्ञान होने पर अनुमान प्रमाण होता है।

इसका अभिप्राय यह है कि जब दो वस्तुओं अथवा घटनाओं का सम्बन्ध नियत हो, अर्थात् अनिवार्य सम्बन्ध देखा जाये तो एक वस्तु अथवा घटना के देखे जाने पर दूसरी का होना मान लेना अनुमान प्रमाण है।

अग्नि और धुएँ के सम्बन्ध का उदाहरण दिया जाता है।

तीसरी प्रकार का प्रमाण शब्द प्रमाण कहलाता है।

आप्तोपदेशः शब्दः ॥ (सां० १-१०१)

आप्त व्यक्ति का कथन भी प्रमाण होता है।

यह हमने पूर्व में बताया है कि वर्तमान विज्ञान केवल अपरा (कार्य-जगत्) के ज्ञान का नाम है। इस कारण इसमें प्रत्यक्ष प्रमाण ही काम करता है। कार्य-जगत् के निरीक्षण के लिये इन्द्रियाँ सक्षम हैं। कभी पदार्थ इतनी दूर होता है अथवा इतना सूक्ष्म होता है कि उसे देखने-सुनने इत्यादि के लिए यन्त्रों की आवश्यकता पड़ती है। इस पर भी देखने, सुनने, सूंघने इत्यादि के लिये इन्द्रियाँ ही साधन हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-V
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
167980
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वर्तमान विज्ञान का प्रमा, अपरा होने के कारण, इन्द्रियों से काम निकल आता है।

परन्तु कभी घटना हो जाने के उपरान्त उसकी खोज करनी होती है। खोज अर्थात् ज्ञान प्राप्त करने के समय घटना नहीं हो रही होती। ऐसी घटनाओं की खोज करने के समय इन वैज्ञानिकों को भी अनुमान प्रमाण की सहायता लेनी पड़ती है।

कभी ऐसा भी होता है कि वस्तु अदृश्य अर्थात् इन्द्रियातीत होती है। तब उस वस्तु के लक्षणों से उसका अनुमान लगाया जाता है।

व्यतीत काल का उदाहरण है सृष्टि-रचना का। सृष्टि-रचना के समय मनुष्य उपस्थित नहीं था। इस पर भी सृष्टि की रचना तो हुई है। यह हम देखते हैं। अतः सृष्टि-रचना का सत्य ज्ञान प्राप्त करने के लिये अनुमान प्रमाण से ही काम लिया जाता है।

जीवित प्राणी के शरीर में चेतना के लक्षण मिलते हैं। उसमें चेतना तो है। यह मृत शरीर में नहीं होती, परन्तु चेतन पदार्थ इन्द्रियगोचर न होने से प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय नहीं। इस कारण आत्मा की उपस्थिति अनुमान प्रमाण से सिद्ध हो सकती है।

आजकल के वैज्ञानिक भी ऐसा ही करते हैं, परन्तु वे इन मूल पदार्थों के विषय में अनुमान प्रमाण का प्रयोग नहीं करते। वे अन्य बातों में तो अनुमान प्रमाण का प्रयोग करते हैं। इसमें कारण यह प्रतीत होता है कि वे मूल पदार्थों के अस्तित्व में विश्वास नहीं रखते।

भारतीय विज्ञान का क्षेत्र ईश्वर से लेकर भूमि पर्यन्त जितने भी पदार्थ हैं उनका ज्ञान है। इन पदार्थों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए न्याय-दर्शन ने लिखा है कि निम्न सोलह बातों का ध्यान रखना चाहिये।

ये सोलह बातें इस प्रकार हैं—

१. प्रमाण २. प्रमेय ३. संशय ४. प्रयोजन ५. दृष्टान्त ६. सिद्धान्त ७. अवयव ८. तर्क ९. निर्णय १०. वाद ११. जलय १२. वितण्डा १३. हेत्वाभास १४. छल १५. जाति १६. विग्रह स्थान।

इन सोलह प्रकार के उपायों से सत्य ज्ञान तक पहुँचा जा सकता है। इन सोलह क्रियाओं में कुछ तो सकारात्मक हैं। अर्थात् वे सिद्धि में सहायक होती हैं। कुछ नकारात्मक भी हैं। इन क्रियाओं से परिणामों की जाँच-पड़ताल होती है।

उदाहरण के रूप में प्रमाण, प्रमेय और संशय को लें। प्रमेय है समस्या। प्रमाण इस समस्या के सुलझाने में सहायता करते हैं। ये ढूंढे जाते हैं। सुझाव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को स्वीकार करने से पहले संशय किया जाता है। इसे जाँच-पड़ताल करना भी कह सकते हैं।

अब एक समस्या का उल्लेख करते हैं। हम जानना चाहते हैं कि भूतल पर प्राणी कब हुआ ? पहले तो प्राणी के विषय में यह जानने की आवश्यकता है कि प्राणी एक मिट्टी का ढेला ही है अथवा इससे कुछ अधिक भी है। अतः प्रमाणों से सिद्ध करना पड़ेगा कि प्राणी जड़ मात्र नहीं है। जब यह प्रमाणों से सिद्ध हो जाये तो फिर इस पर संशय किया जा सकता है। प्राणी में चेतन-तत्व के लक्षण मिलते हैं। संशय का निवारण हो जाने पर प्रमाण की पुष्टि मानी जायेगी।

समाधान के सब अंगों को पृथक्-पृथक् कर देखने को 'अवयव' कहा जाता है।

संशय निवारण के उपरान्त प्रतिज्ञा होती है। इसे आजकल के वैज्ञानिक 'हाईपॉथेसिस' कहते हैं। इसके उपरान्त हेतु, उदाहरण इत्यादि से समस्या को सुलझाने में सहायता मिलती है।

हमारा अभिप्राय यह है कि किसी साध्य को सिद्ध करने के लिये सोलह उपाय हैं।

वर्तमान विज्ञान के परीक्षण सिद्धि के इन सोलह उपायों में एक हैं। जो कुछ ये वैज्ञानिक 'टैस्ट-ट्यूब' में परीक्षण करते हैं वह तो सिद्धि का प्रथम अंग है। परीक्षण एक प्रमाण उपस्थित करता है जिसकी परीक्षा के लिये शेष आवश्यक अंगों का प्रयोग कर प्रमाण का अर्थ समझने की आवश्यकता होती है। कई बार ऐसा भी होता है कि प्रमाण कुछ प्रकट करता है और परीक्षण करने वाला उसका अर्थ दूसरा निकाल लेता है।

उदाहरण के रूप में अमेरिका में एक अवैध लड़की पैदा होते ही छुपा ली गयी और पाँच वर्ष तक उसको दूसरों की संगति से वंचित रखा गया।

यह एक वास्तविक घटना है। इसका विस्तृत उल्लेख हम किसी अगले अध्याय में करेंगे। वह लड़की चलना-फिरना, खड़ा होना, बोलना, यहाँ तक कि खाना-पीना भी नहीं सीख सकी।

इस घटना का अर्थ यह है कि मनुष्य को ज्ञान सदा दूसरे से प्राप्त होता है। परन्तु इसका अर्थ यह भी लिया जा सकता है कि समाज व्यक्ति के व्यक्तित्व के लिये एक आवश्यक अंग है। मनुष्य को समाज के बिना नहीं रहना चाहिये।

अतः परीक्षण तो एक वस्तु-स्थिति उपस्थित करते हैं, परन्तु उस वस्तुस्थिति उत्पन्न होने में कारण युक्ति ही बताती है। अर्थात् विज्ञान और फ़िलॉसोफ़ी साथ-साथ चलते हैं।

एक यूरोपियन दार्शनिक इसी बात का वर्णन इस प्रकार करता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

"Science gives us knowledge but philosophy gives us wisdom."

Will Durant—'The Story of Philosophy'. P. XXVII.

यही दार्शनिक एक अन्य स्थान पर लिखता है—

"Science is analytical description, philosophy is synthetic interpretation." Ibid. p. XXVII.

इन दोनों उदाहरणों का अर्थ है—

(१) साइंस से जानकारी (ज्ञान) प्राप्त होती है, परन्तु (सत्य) दर्शन दर्शनशास्त्र ही कराते हैं।

(२) साइंस विश्लेषणात्मक वर्णन है और दर्शन श्लेषणात्मक विवेचना है।

सब स्थानों में परीक्षा और विवेचना पृथक्-पृथक् स्वीकार किये गये हैं। जहाँ वर्तमान विज्ञान को परीक्षणात्मक कहा है, वहाँ भारतीय विज्ञान उसे प्रत्यक्ष में देखता है। इस प्रत्यक्ष का अर्थ दर्शन (फिलौसोफी) से प्राप्त किया जाता है।

साथ ही प्रत्यक्ष एक प्रकार का प्रमाण है। जहाँ प्रत्यक्ष सम्भव नहीं वहाँ दूसरे प्रमाण हैं जो सहायक होते हैं।

न्याय दर्शनशास्त्री चार प्रकार के प्रमाण मानता है—

प्रत्यक्षानुमानोपयानशब्दाः प्रमाणानि ॥ (न्या० १-१-३)

प्रत्यक्ष को न्याय दर्शन अधिक स्पष्टता से वर्णन करता है—

इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम् ॥

(न्या० १-१-४)

इन्द्रियों और उनके विषयों के सम्बन्ध से उत्पन्न होने वाले भ्रम-रहित ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं।

इसमें दो बातें हैं। ज्ञान अव्यभिचारी (भ्रम-रहित) हो और दूसरा यह कि आशब्दम् अर्थात् आप्त (ज्ञाताओं) के पूर्व निर्भ्रान्त कथन के विपरीत न हो।

इन्द्रियाँ जो ज्ञान प्राप्त कराती हैं, वे पाँच हैं। यह हम ऊपर बता चुके हैं। इनके अतिरिक्त आभ्यन्तरिक इन्द्रियाँ हैं मन और बुद्धि। ये आभ्यन्तरिक इन्द्रियाँ बाह्य इन्द्रियों से प्राप्त ज्ञान का विश्लेषणात्मक विवेचन उपस्थित करती हैं।

बाह्य इन्द्रियों की सामर्थ्य को यन्त्रादि से अत्यधिक बढ़ाया जा रहा है। इससे जानकारी में तो वृद्धि हो रही है, परन्तु बुद्धि और मन की सामर्थ्य को कोई बाहरी यन्त्र सामर्थ्यवान नहीं बना सकता। इसके लिए आभ्यन्तरिक यन्त्रों को निर्मल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और तीव्र करने के उपाय भारतीय वैज्ञानिक प्रस्तुत करते हैं। ये उपाय हैं योग-क्रियायें।

योग क्रियाओं से मन और बुद्धि निर्मल, क्रियाशील तथा बलवान होती हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान युग के वैज्ञानिक इस दूसरी प्रक्रिया की अवहेलना कर रहे हैं। परिणाम यह है कि ये देखते तो कदाचित् ठीक ही हैं, परन्तु इनमें देखे को समझने की उतनी सामर्थ्य नहीं जितनी कि कार्य-जगत् को समझने के लिये चाहिये।

न्याय दर्शन में एक चौथा प्रमाण कहा है। वह उपमान है। वास्तव में 'सांख्य-दर्शन' के 'अनुमान' के अन्तर्गत ही यह आ जाता है।

अनुमान लगाने की आवश्यकता तब उत्पन्न होती है जब किसी भी कारण से विषय (object) इन्द्रियों के सन्निकर्ष (सम्पर्क) में न आ सके। कोई घटना जो काल, स्थान अथवा वस्तु की किसी विशेष परिस्थिति के कारण इन्द्रियों के सम्पर्क में नहीं आती तो फिर वैसी ही घटना अथवा वस्तु का किसी वर्तमान घटना अथवा वस्तु से सम्बन्ध ढूंढा जाता है। जब ऐसा सम्बन्ध दृष्टिगत होता है और बार-बार देखने से वह सम्बन्ध नियत सिद्ध हो जाता है तो एक की, उस काल, स्थान अथवा स्थिति में उपस्थिति दूसरी की उपस्थिति की द्योतक होती है।

इस विषय में विख्यात उदाहरण अग्नि और धुएँ का दिया जाता है। ऐसा अनेक बार देखने से उनका एक नियत सम्बन्ध माना जाता है।

आज का विज्ञान मुख्यतः प्रत्यक्ष पर ही आधारित है। उसमें भी परीक्षणों से उपलब्ध प्रमाणों पर युक्तियाँ की जाती हैं। इनमें उनका अयुक्त (योग क्रियाओं से रहित) मन और बुद्धि प्रायः उनको मिथ्या दिशा में ले जाते हैं। यही कारण है कि प्रति दस वर्ष के उपरान्त पहली युक्तियों से प्रतीत किये गये निष्कर्ष बदलने पड़ जाते हैं।

वर्तमान विज्ञान-वेत्ता अब अनुमान प्रमाण का आश्रय लेने लगे हैं। उदाहरण के रूप में भूगर्भ शास्त्र (geology) प्रायः सबका सब अनुमान प्रमाण पर निर्धारित ही है।

इस पर भी अनुमान प्रमाण में एक आवश्यक शर्त, कि वह किसी वर्तमान में देखे नियत सम्बन्ध पर आधारित हो, वे भूल जाते हैं। वे वर्तमान में वैसी ही स्थिति को ढूंढे बिना प्राचीन काल के विषय में अनुमान लगाने लगते हैं।

उदाहरण के रूप में आस्ट्रेलिया में किसी खुदाई में एक खोपड़ी मिली जो किसी अतीत काल के जन की है। यह तो देखा गया और कदाचित् ठीक ही देखा गया कि उस खोपड़ी में किसी प्रकार का उन्नत मस्तिष्क नहीं होगा। परन्तु उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खोपड़ी का जन्तु वर्तमान मनुष्य का पूर्वज है, यह अनुमान किसी नियत सम्बन्ध का परिणाम नहीं। परन्तु भूगर्भ शास्त्री उसे एक ऐतिहासिक प्रमाण मानते हैं।

अनुमान प्रमाण में आधार वर्तमान काल में प्रत्यक्ष में देखा कोई नियत सम्बन्ध होना चाहिये।

इसी प्रकार के अन्य उदाहरण हम अगले अध्यायों में वर्णन करेंगे। यहां तो इतना बनाने से ही अभिप्राय है कि वर्तमान में दो वस्तुओं अथवा घटनाओं में नियत सम्बन्ध देखने पर उस सम्बन्ध को आधार बन कर हम अनुमान लगा सकते हैं और ऐसा अनुमान प्रमाण माना जायगा। बिना वर्तमान काल में वैसे सम्बन्ध को देखे, मूल में अथवा अदृश्य मूल में वैसे सम्बन्ध की कल्पना का अनुमान नहीं हो सकता।

जहाँ तक शब्द प्रमाण का सम्बन्ध है यह वर्तमान युग में केवल उन लोगों के लिए है जो अन्वेषण कार्य में नहीं लगे हुए अथवा विद्यार्जन में लीन हैं।

आज कोई किसी दूसरे को आप्त मानने के लिए तैयार नहीं। कदाचित् यह ठीक भी है। आज कोई आप्त व्यक्ति है भी अथवा नहीं, कहना कठिन है।

अतः दो प्रमाण, प्रत्यक्ष और अनुमान ही रह जाते हैं। अनुमान का आधार भी कुछ प्रत्यक्ष होना चाहिए।

कई मज़हबों वाले यह कहते हैं कि ईश्वरीय कार्यों में प्रत्यक्ष अथवा प्रत्यक्ष पर आधारित कोई भी बात ठीक नहीं हो सकती। उनका कहना है कि ईश्वर, परमात्मा, खुदा इत्यादि नामों से जाना जाने वाला तत्व अव्यक्त इन्द्रियातीत होने से प्रत्यक्ष के किसी भी पदार्थ अथवा घटना से सम्बन्धित नहीं हो सकता। इस कारण परमात्मा अथवा अव्यक्त पदार्थ प्रत्यक्ष अथवा अनुमान का विषय नहीं हो सकता। अनुमान भी तो प्रत्यक्ष में देखे नियत सम्बन्ध से सम्बन्धित होता है।

इस युक्ति को सब दार्शनिक स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि अव्यक्त के चिह्न अर्थात् लिंग तो प्रत्यक्ष होते हैं। उनसे अदृश्य अव्यक्त का अनुमान लग सकता है।

उदाहरण के रूप में जीवात्मा अव्यक्त माना जाता है, परन्तु जीवात्मा के लिंग तो सब प्राणियों में देखे जाते हैं। इस कारण प्राणी में जीवात्मा की उपस्थिति का अनुमान स्वीकार किया जाता है। जीवात्मा के लिंग हैं—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्॥ (न्या० १-१-१०)

अर्थात्—इच्छा करना, विपरीत परिस्थितियों से द्वेष, अनुकूल स्थिति को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न, सुख-दुःख अनुभव करना और चेतनता—ये आत्मा के लिंग हैं। ये सबके सब प्राणियों में प्रत्यक्ष देखे जाते हैं। इस कारण इन लिंगों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राणी के शरीर में एक आत्मा की उपस्थिति का ज्ञान होता है।

अतः जहाँ प्रत्यक्ष में किसी सम्बन्ध का ज्ञान हो जाये तो उसी सम्बन्ध के आधार पर अप्रत्यक्ष में भी सम्बन्ध होने से अनुमान प्रमाण ही माना जाता है।

यन्त्रादि के विकास से इन्द्रियों की सामर्थ्य में वृद्धि हुई है। परन्तु संश्लेषणात्मक मन और बुद्धि उनसे प्रभावित नहीं हुए। यही कारण है कि वर्तमान विज्ञान (यन्त्रादि सहित) प्रत्यक्ष के अतिरिक्त किसी प्रमाण को या तो मानता ही नहीं और यदि मानता है तो उसमें युक्ति ठीक ढंग पर नहीं कर सकता।

अतः दार्शनिक 'विल डयूरैण्ट' (will Durant) का कथन सर्वथा सत्य है कि वर्तमान विज्ञान समन्वयात्मक नहीं। कहीं-जहाँ समन्वय करने का यत्न किया गया है, वह युक्तियुक्त नहीं है।

उदाहरण के रूप में भूगर्भ शास्त्री अपने निर्णयों का आधार विकासवाद मानते हैं और विकासवादी अपनी मान्यता को भूगर्भ शास्त्रियों के कथन से प्रमाणित करते हैं। अन्योन्य आश्रित होने से दोनों सिद्धान्त असिद्ध हैं।

यहां एक उदाहरण भारतीय वैज्ञानिकों का भी दे दिया जाये तो ठीक है। दर्शनशास्त्र में एक वक्तव्य है—

जन्माद्यस्य यतः ॥ (ब्र० सू० १-१-२)

अर्थात्—जिससे कार्य-जगत् की उत्पत्ति, प्रलय इत्यादि होता है, यह ब्रह्म है।

यहाँ ब्रह्म का अर्थ केवल परमात्मा नहीं है।

भारतीय वैज्ञानिक जगत् को प्रत्यक्ष देखता है। इस जगत् का निर्माण और विघटन हो रहा भी वह नित्य देखता है। परन्तु इसके करने वाले को न देखता हुआ भी उसका वह अस्तित्व मानता है।

भारतीय वैज्ञानिक यह मानता है कि जब तर्क प्रतिष्ठित हो तो वह सत्य ज्ञान का देने वाला होता है। कहा गया है—

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथाऽनुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः ॥

(ब्र० सू० २-१-११)

अर्थात्—युक्ति अप्रतिष्ठित होने से अर्थात् युक्ति के निराधार होने से दूसरे ढंग से भी युक्ति हो सकती है। यदि यह है तो अनुमेय की विनिर्मुक्ति अर्थात् अनुमेय की सिद्धि नहीं हो सकेगी।

इसका अभिप्राय यह है कि अनुमान प्रमाण में वह युक्ति नहीं चल सकती जिसका आधार न हो। आधार की बात हम बता चुके हैं। जब दो वस्तुओं अथवा घटनाओं को बार-बार देखने से सम्बन्ध नियत हो जायें तो एक को देख

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कर दूसरे के होने का अनुमान प्रतिष्ठित युक्ति है।

प्रत्यक्ष देखने पर भी उसके अर्थ लगाने में युक्ति की आवश्यकता होती है। प्रत्यक्ष के अर्थ भी गलत लग सकते हैं।

अतः वैज्ञानिक के लिए युक्ति (विचार शक्ति) अत्यावश्यक है। युक्ति बुद्धि का विषय है। इस कारण निर्मल और तीक्ष्ण बुद्धि एक वैज्ञानिक के लिए आवश्यक है।

भारतीय शास्त्र बुद्धि को निर्मल और तीक्ष्ण करने की प्रक्रिया बताते हैं।

इस विषय पर हम सृष्टि-रचना के अध्याय में पुनः लिखेंगे और बतायेंगे कि वर्तमान वैज्ञानिक अपनी विशेष कला बुद्धि (टैक्निकल सैंस) रखने पर भी कहाँ भूल कर रहे हैं? अतएव भारतीय वैज्ञानिकों ने विज्ञान और योग सिद्धि को पृथक्-पृथक् नहीं किया। दोनों ऐसे मिले हुए हैं जैसे कि एक नदी बहती हुई सागर से मिल जाती है।

दर्शनशास्त्र (लौजिक) योग की उपज है। परन्तु योग भी स्वाध्याय के बिना निष्फल हो जाता है। पतञ्जलि मुनि ने योग दर्शन में लिखा है—

तपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः॥ (योग० २-१)

अर्थात्—योग का क्रियात्मक स्वरूप तप, स्वाध्याय और ईश्वर पर विश्वास है।

वे लोग जो योग क्रियायें जानते हैं और स्वाध्याय नहीं करते, वे योग में सिद्धि प्राप्त नहीं कर सकते।

कारण यह है कि बुद्धि उन विषयों पर ही मनन कर सकती है जिनका संचय मन पर होता है। मन पर ज्ञान का संचय प्रथम आधार है। जब कुछ ज्ञान वहाँ पर संचित नहीं तो बुद्धि मनन किस बात पर करेगी? इसी कारण योग दर्शन के साधना पाद को आरम्भ करते हुए पहली बात ही यह कही है कि तप अर्थात् यम-नियम का पालन और स्वाध्याय अत्यावश्यक है।

परन्तु इसका अर्थ यह भी नहीं कि स्वाध्याय करता रहे और स्वाध्याय से संचित विचारों पर मनन न करे।

हमारे विचार में यही त्रुटि है वर्तमान विज्ञान की। यह विज्ञान तार्किक उत्पन्न नहीं कर रहा। परीक्षणों से वही मतलब पूरा होता है जो स्वाध्याय से होता है। नित्य नयी बात सामने आती रहती है। परन्तु उस सामग्री पर जो स्वाध्याय तथा परीक्षणों से सामने आती है, जब तक निर्मल बुद्धि से मनन नहीं किया जायेगा, तब तक विज्ञान ठीक दिशा में नहीं जायेगा।

अतएव विज्ञान की उपलब्धि में केवल दो ही साधन हैं—प्रत्यक्ष और अनुमान। प्रत्यक्ष ज्ञान बिना यन्त्रों की सहायता के इन्द्रियों से भी होता है और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यन्त्रों की सहायता से भी होता है। दोनों अवस्थाओं में कार्य करने वाली इन्द्रियाँ ही हैं।

भारतीय विद्वान इन्द्रियों के पीछे बैठे हुए जीवात्मा को देखने, सुनने, सूँघने और स्पर्श करने वाला तथा जिह्वा से स्वाद लेने वाला मानते हैं। शास्त्र में इस प्रकार कहा गया है—

एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः। स परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते ॥ (प्रश्न० ४-९)

वह विज्ञानात्मा पुरुष ही देखने वाला, सुनने वाला, सूँघने वाला, स्पर्श करने वाला, जिह्वा से रस लेने वाला, मनन करने वाला, जानने वाला और करने वाला है। वह परम आत्मा परमात्मा में प्रतिष्ठित है।

अभिप्राय यह है कि परीक्षणों में जो कुछ यन्त्रों द्वारा अथवा बिना यन्त्रों के देखा जाता है वह इन्द्रियों के द्वारा जीवात्मा ही देखता है और जीवात्मा परमात्मा में प्रतिष्ठित है।

अतः इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि और जीवात्मा जब एक ही स्वर में हों तो किसी शुद्ध और सत्य परिणाम पर पहुँचा जा सकता है।

इसका यह अभिप्राय नहीं कि मन, बुद्धि और आत्मा बिना प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त किये भी कार्य कर सकेंगे। वास्तव में योग दर्शन के स्वाध्याय के अन्तर्गत प्रयोगशाला के परीक्षणों को समझना चाहिये।

अन्वेषण योग्य एक ही पदार्थ है। वह है कार्य-जगत्। सब साइंसदाँ और भारतीय वैज्ञानिक इसी के विभिन्न अंगों के रहस्य को समझने में लगे हुए हैं। दोनों में अन्तर यह है कि भारतीय वैज्ञानिक इसके मूल कारणों से आरम्भ कर इसके अंग-प्रत्यंग को जानने का यत्न कर रहे हैं और वर्तमान युग के वैज्ञानिक पत्तों और शाखाओं में उलझे हुए हैं।

ऐसा भी कहा जा सकता है कि भारतीय वैज्ञानिकों ने भी अपनी खोज तो कार्य-जगत् रूपी वृक्ष के पत्तों और शाखाओं से ही आरम्भ की थी, पुरन्तु वे मूल तक जा पहुँचे हैं।

यदि ऐसा न होता तो ब्रह्म की व्याख्या करने वाला ब्रह्मसूत्र का आरम्भ इस सूत्र से न करता—

'जन्माद्यस्य यतः ॥'

अर्थात्—जिससे इस कार्य जगत् की उत्पत्ति, पालन और प्रलय होती है, वह ब्रह्म है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनन्तर जब वह कार्य जगत् के मूल पदार्थों का वर्णन आरम्भ करने लगा था तो यह न लिखता—

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ॥ (ब्र० सू० १-२-१)

अर्थात्—जो सब स्थान पर प्रसिद्ध है उसके वर्णन से।

हमारा यह निश्चित मत है कि भारतीय वैज्ञानिकों की खोज भी जगत् के भिन्न-भिन्न पदार्थों से आरम्भ हुई थी।

यह एक पृथक् बात है कि भारतीय वैज्ञानिक कार्य-जगत् के मूल कारणों तक पहुँच गये हैं और पाश्चात्य वैज्ञानिक अभी इन तत्वों तक नहीं पहुँच सके।

हमारे विचार में इसका कारण भारतीय वैज्ञानिकों का योगी होना है।

योग-युक्त बुद्धि की बहुत महिमा मानी गयी है। भगवद्गीता में लिखा है—

नास्ति बुद्धिरयुक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न चाभवयतः शान्तिरशान्तस्य कुतः सुखम् ॥ (भ० गी० २-६६)

योगहीन मनुष्य की बुद्धि (उन्नत) नहीं होती और योग-विहीन व्यक्ति में भावना (ब्रह्म में) नहीं होती। जिस जीवात्मा में आस्तिक्य भावना (ब्रह्म में अर्थात् मूल तत्त्वों में विश्वास) नहीं, उसे चित्त की शान्ति प्राप्त नहीं होती। चित्त की शान्ति सिद्धि की सूचक है।

आस्तिक्य के विषय में पाश्चात्य वैज्ञानिक इस प्रकार लिखता है—

Admittedly in the 18 th century the French Encyclopaedists and some of the first English utilitarians had been determinists; as, in some sence, had been certain Renaissance and medieval heretics; and a number of thinkers of antiquity. But it was Newton who first demonstrated a law of physical movement which seemed wholly unrelated to any spiritual order.

Ency. Brit. (1967) Vol. 20. P. 16

अर्थात्—यह मानना पड़ेगा कि अट्ठारहवीं शताब्दी के फ्रांसीसी 'ऐन-साईक्लोपीडिया' लिखने वाले और प्रथम अंग्रेज़ व्यावहारिकवादी लोग, नियति वादी थे। (नियतिवाद का अर्थ है कि संसार के कार्य को नियत करने वाला कोई परोक्ष में है।) वैसे ही एक विचार से, यूरोप में पुनरुत्थानवादी और मध्य-कालीन विधर्मी, प्राचीन काल के विचारक भी थे। यह तो न्यूटन था जिसने सबसे पहले यह सिद्ध कर दिया था कि पदार्थों में गति किसी दैवी शक्ति से सम्बन्धित नहीं।

यह वक्तव्य इस बात का उदाहरण है कि ठीक बात की मिथ्या विवेचना किस प्रकार की जाती है? यह विवेचना न्यूटन ने की है अथवा उसके बाद में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने वाले वैज्ञानिकों ने की है, इससे हमारा सम्बन्ध नहीं। हमारा तो यह कहना है कि न्यूटन के गति के नियमों से अनीश्वरता सिद्ध नहीं होती।

न्यूटन का गति सम्बन्धी मुख्य नियम यह है—

Every particle of matter continues in a state of rest or motion with constant speed in a straight line unless compelled by a force to change that state.

अर्थात्—प्रकृति का प्रत्येक कर्णा अचल स्थिति में पड़ा रहता है अथवा एक ही गति से तथा एक ही सीधी दिशा में चलता रहता है जब तक किसी अन्य शक्ति से अपनी स्थिति बदलने पर विवश न हो जाये।

यह नियम तो इस ब्रह्माण्ड में किसी सामान्य से अधिक सामर्थ्यवान् (Super-natural) सत्ता के अस्तित्व को सिद्ध करता है।

जब यह सिद्ध हो गया कि पदार्थ का कोई भी कण न तो ठहरी हुई स्थिति से गति में आ सकता है तो हमारा यह कहना है कि रचना काल में पदार्थों को गति देने वाला कोई था।

सिद्ध यह करना चाहिये था कि रचना हुई ही नहीं। यदि न्यूटन अथवा कोई अन्य यह सिद्ध कर दे कि सृष्टि रचना नहीं हुई तब उसकी विवेचना पर विचार किया जा सकता है।

वस्तुस्थिति यह है कि अन्तरिक्ष में हम नक्षत्रादि का टूटना देखते रहते हैं। साथ ही कई 'नैबुला' (हिरण्यगर्भ) बनते हुए देखे गये हैं। तो इनको विनष्ट करने वाली शक्ति अथवा इनके निर्माण करने वाली शक्ति के अस्तित्व को मानना पड़ेगा।

एक अन्य स्थिति है। अन्तरिक्ष के सब पदार्थों की गति चक्राकार अथवा अण्डाकार है। इन दोनों गतियों में नक्षत्र एक बार एक दिशा में जाता है और दूसरी बार विपरीत दिशा में। यह दिशा में परिवर्तन कैसे आरम्भ हुआ? यह कहा जा सकता है कि दो शक्तियाँ, एक अभिकेन्द्रीय और दूसरी अपकेन्द्रीय शक्तियों के संयुक्त कार्य के कारण चक्राकार अथवा अण्डाकार गति उत्पन्न होती है।

हमारा इसमें यह प्रश्न है कि इन दोनों शक्तियों का संयोग किसने किया? जब रचना नहीं थी तब तो इनका संयोग नहीं था। अतः ये कब, क्यों और किसकी करनी से संयोग में आयीं, जिससे अन्तरिक्ष के पदार्थ इन विषम गतियों में घूमने लगे?

यह युक्ति अकाट्य है कि जो वस्तु जिस रूप में विनष्ट होती है वह, उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप में कभी बनी भी थी। अतः सब निर्मित पदार्थ जब बने तो वे निश्चलावस्था से चलावस्था में आये अर्थात् विघटित अवस्था से संघटित अवस्था में आये। न्यूटन ने यह नियम प्रतीत किया कि कोई भी प्रकृति का कण अचल से चल अवस्था में नहीं आ सकता। अतः न्यूटन के इस नियम से यह स्वतः सिद्ध है कि सृष्टि-रचना के समय किसी ने प्रकृति के निश्चल कणों में गति उत्पन्न की।

इन नास्तिकों को यह सिद्ध करना चाहिये कि रचना हुई ही नहीं। विघटन हुआ ही नहीं। ऐसा सिद्ध करने पर ही ये लोग कह सकते हैं कि रचयिता नहीं है।

न्यूटन के गति सम्बन्धी नियमों से तो यह सिद्ध होता है कि प्रकृति के अतिरिक्त कोई शक्ति है जो इसके कणों में गति पैदा कर रचना-कार्य करती है और प्रलय के समय इनकी गति का विरोध कर इनको निश्चल अवस्था में कर देगी।

यह मिथ्या विवेचना क्यों हुई? इसमें कारण यही प्रतीत होता है कि वैज्ञानिकों का ज्ञान तो उत्कृष्ट है, परन्तु उस उत्कृष्ट ज्ञान की सत्य विवेचना करने की उनमें बुद्धि नहीं है।

भारतीय शास्त्र ने तो यह कहा है कि जिससे रचना, विघटन और पालन हो रहा है, वह ब्रह्म है।

ब्रह्म क्या है? इसका स्वरूप क्या है और इसका स्वभाव क्या है? यह पृथक् बात है। इस विषय में भी प्रतिष्ठित तर्क से हम सत्य परिणामों पर पहुँच सकते हैं।

यही कारण है कि भारतीय शास्त्र वैज्ञानिक उसे कहते हैं जो योगी भी हो। इसी कारण उपनिषद् ग्रन्थों में बुद्धि का नाम विज्ञान कहा गया है और जीवात्मा जो श्रेष्ठ बुद्धि से संयुक्त होता है, वह विज्ञानात्मा माना गया है।

इस कण्डिका में हमने ज्ञान की उपलब्धि के साधनों पर प्रकाश डाला है। संक्षेप में वह है तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान। तदनन्तर यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हैं।

अतएव एक वैज्ञानिक में ये गुण होने चाहिएँ—

(१) जिज्ञासा; अर्थात् सत्य को जानने की उत्कट अभिलाषा;

(२) जिज्ञासा की पूर्ति के लिये तपस्या की भावना; अर्थात् लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कठोर से कठोर परिश्रम करने का संकल्प;

(३) ईश्वर पर विश्वास;

(४) ज्ञान प्राप्ति के दो ही साधन हैं। स्वाध्याय तथा गुरुजनों की सेवा।

(५) निर्मल तथा तीक्ष्ण बुद्धि। इसी के लिये योगाभ्यास की आवश्यकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

जगत् रचना की भूमिका

: १ :

जगत्-रचना की प्रक्रिया और इसके रचना काल तथा स्थान प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय नहीं हैं। इसमें प्रत्यक्ष कोई कार्य नहीं करता। न तो रचना के पूर्ण प्रक्रिया काल में मनुष्य उपस्थित था और न ही स्थान के विषय में मनुष्य कुछ देख-सुन सकता है।

इस पर भी यह विषय सर्वाधिक रुचिकर एवं आवश्यक है। यही विज्ञान की सब शाखाओं का मूल विषय है। वर्तमान काल के वैज्ञानिक भी इस विषय को छोड़ नहीं रहे। वे उस प्रक्रिया को जानने के लिये उत्सुक हैं। उन्होंने इस विषय का नाम कॉस्मोगोनी (Cosmgony) रखा है।

इस विषय के अन्वेषक यह मानते हैं कि ब्रह्माण्ड के सब 'नैब्युला' (Nebula) अर्थात् हिरण्यगर्भ हमारी 'गैलेक्सी' (आकाश गंगा) से दूर जा रहे हैं। हमारी पृथ्वी आकाश गंगा का एक छोटा-सा कण है। अन्य हिरण्यगर्भ इससे दूर जा रहे हैं। ये सब एक गति से जा रहे हैं और उस गति से यह अनुमान लगाया गया है कि ५×१०^९ वर्ष पहले वे हिरण्यगर्भ हमारी 'गैलेक्सी' (आकाश गंगा) का अंग ही थे।

इसका वर्णन वर्तमान वैज्ञानिक इस प्रकार करते हैं—

...These new values of intergalactic distances give for the age of the universe the value of 5,000,000,000 (5×10^9) years, which is in perfect agreement with the age of stars and the age of Earth as given by the improved astrophysical and geological methods. Close coincidence among the figures obtained for the age of the universe, stars and planets indicates that all major astronomical features of the universe originated rather early in the beginning of its evolution, and that nothing very exciting has happened since then (except, of course, organic evolution.)

Ency. Brit. Vol. 6, p. 578 b.

अर्थात्—गैलेक्सियों के भीतर अन्तर के नये अनुमानों से पूर्ण ब्रह्माण्ड

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(Universe) की आयु ५ × १०[९] वर्ष आंकी गयी है। यह सर्वथा वही है जो नक्षत्रों, ग्रहों और पृथ्वी की आयु आकाश-विज्ञान (Astro-physics) अथवा भूगर्भ शास्त्र (Geology) के उन्नत उपायों से प्रतीत की गयी है। दोनों में समानता है जिससे ब्रह्माण्ड, नक्षत्रों और ग्रहों की आयु पता चलती है। यह प्रकट करती है कि अन्तरिक्ष की मुख्य घटनायें जो जगत् के विकास के आरम्भ में हुई थीं, उनके उपरान्त कुछ भी उल्लेखनीय नहीं हुआ (पृथ्वी पर प्राणी की उत्पत्ति के अतिरिक्त)।

इस विषय पर कुछ न कहते हुए हम यह बता देना चाहते हैं कि भारतीय विज्ञान भी यह मानता है कि ब्रह्माण्ड फैल रहा है। इस ब्रह्माण्ड में हिरण्यगर्भ अनेक हैं।

यह भी भारतीय वैज्ञानिक मानते थे कि एक समय यह पृथ्वी और नक्षत्र समीप-समीप थे। पीछे इनको दूर-दूर किया गया। यह लिखा है—

इमौ लोकौ व्यं ताम्। अग्न आ याहि वीतय इति, यदाह—अनयोः लोकयोः वीत्येः। तै० सं० ५-१-५

(पं० भगवद्दत्त द्वारा 'वेद-विद्या-निदर्शन' में पृष्ठ २०७ पर उद्धृत)

अर्थात्—ये दोनों (पृथ्वी और नक्षत्र) पृथक्-पृथक् हैं। 'अग्न आ याहि वीतय' यह जो मन्त्र कहा है, इन दोनों लोकों के पृथक्-पृथक् होने के लिये है।

इस विषय में शतपथ ब्राह्मण में भी लिखा है—

अग्रे लोका आसुरित्युन्मृश्या हैव द्यौरास॥

(श० ब्रा० १-४-१-२२)

अर्थात्—पहले लोक मिले हुए थे। हम आकाश को इस प्रकार (हाथ बढ़ाकर) छू सकते थे।

यूनिवर्स को संस्कृत में ब्रह्माण्ड कहते हैं। ब्रह्माण्ड का अर्थ है जो महान् अण्डे से उत्पन्न हुआ। अण्डा फटा तो फिर इससे ग्रह बने, नक्षत्र बने और अन्तरिक्ष बना।

इस का वर्णन मनुस्मृति में इस प्रकार मिलता है—

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद्विसृष्टः स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते॥
तस्मिन्नण्डे स भगवानुषत्वा परिवत्सरम्।
स्वयमेवाऽऽत्मनो ध्यानात्तदण्डमकरोद्द्विधा॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ताभ्यां स शकलाभ्यां च दिवं भूमिं च निर्ममे।
मध्ये व्योम दिशश्चाष्टावपां स्थानं च शाश्वतम् ॥

(मनु०—१-११, १२, १३)

अर्थात्—वह जो सबका कारण है, सत् और असत् है, नित्य है उससे उत्पन्न पुरुष ब्रह्मा कहा जाता है।

इसका अभिप्राय है कि सत्-असत् (प्रकृति) से जो कुछ उत्पन्न हुआ, वह ब्रह्मा था।

ब्रह्मा ने उस निर्मित अण्डे में एक वर्ष (ब्रह्म दिन का $\frac{१}{१००}$ भाग काल) तक निवास किया। तदनन्तर उस अण्डे के दो टुकड़े कर दिये।

वे दो टुकड़े पृथ्वी (ग्रह) और दिवं (नक्षत्र) बने और बीच में व्योम बन गया। इस व्योम की आठ दिशायें हैं, जो शाश्वत हैं।

इस अण्डे से जो कुछ बना, वह ब्रह्माण्ड है।

अण्डे के फटने से करोड़ों नक्षत्रादि बने। कई आकाश-गंगाएँ बनीं। भारतीय वैज्ञानिक यह मानते हैं कि ब्रह्माण्ड के परे भी स्थान है। एक अनन्त खाली स्थान (space) है। इसका अन्त नहीं। इसमें सृष्टि रचना के समय प्रकृति जिसे सत्-असत् कहा है, उपस्थित थी और इस प्रकृति में परमात्मा के तेज से विक्षोभ उत्पन्न हुआ। उस अनन्त अन्तरिक्ष (space) के एक सीमित स्थान में ही विक्षोभ उत्पन्न हुआ। यह सीमित स्थान भी पद्मों मील लम्बा-चौड़ा था। इस विक्षोभ से एक हिरण्यगर्भ (वृहद् अण्डा) बना। ब्रह्म दिन के $\frac{१}{१००}$ भाग में (४,३२,००,००० सौर वर्ष तक) विक्षोभ होता रहा। अण्डा फटा और उसमें से नक्षत्र तथा ग्रह बाहर को फेंके गये। यह अन्तरिक्ष कितनी-कितनी दूर तक फैला हुआ है, इस विषय में लिखा है—

अक्षरमम्बरान्तधृतेः ॥ (ब्र० सू० १-३-१०)

अर्थात्—परमात्मा अम्बर के अन्त तक धारण करता है। परमात्मा अनन्त है; इस कारण अम्बर (अन्तरिक्ष) भी अनन्त है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि इस 'गैलेक्टिक' ब्रह्माण्ड के बाहर अन्तरिक्ष में भी क्या रचना-कार्य हो रहा है?

अनुमान से ही कहा जाता है कि रचना इस ब्रह्माण्ड के बाहर भी हो रही है। वर्तमान ब्रह्माण्ड जिसमें हमारी पृथ्वी है, एक चक्राकार घेरा है। यह समझा जाता है कि बड़े-बड़े नक्षत्रों में परस्पर आकर्षण के कारण यह ब्रह्माण्ड (यूनिवर्स) चक्र की भाँति हो गया है।

इसकी तुलना में भारतीय विज्ञान यह मानता है कि ब्रह्माण्ड बनने से पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस पूर्ण स्थान पर जहाँ सृष्टि-रचना होने वाली थी, प्रकृति के परमाणु भरे हुए थे। वे परमाणु त्रिगुणात्मक थे। तीनों गुण साम्यावस्था में थे। अर्थात् वे परस्पर एक-दूसरे के प्रभाव को विलीन कर रहे थे।

इस स्थिति का वर्णन ब्रह्मसूत्र में इस प्रकार है—

त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ॥ (ब्र० सू० १-४-६)

अर्थात्—तीनों का ही वर्णन है और इनकी ही सब विवेचना है। प्रकृति के प्रत्येक परमाणु में तीन गुण हैं और इनका ही पूर्ण जगत् में उपन्यास है।

सांख्य दर्शन इसे इस प्रकार लिखता है—

सत्त्व रजस् तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। (सां० १-६१)

ऐसी साम्यावस्था में प्रकृति के स्वभाव और स्वरूप के विषय में लिखा है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम्।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥

(मनु० १-५)

अर्थात्—(प्रलय काल) में यह सब कुछ अन्धकार में लीन था। तब यह (इन्द्रियों से) नहीं जाना जा सकने योग्य था, लक्षण रहित था; वह तर्क का विषय नहीं था। न ही चेतन था और सब कुछ सोये हुए के समान था।

भारतीय वैज्ञानिक मानते हैं कि इस अवस्था में प्रकृति से यह ब्रह्माण्ड रचा गया।

कैसे ? वह आगे लिखेंगे।

जहाँ तक अन्तरिक्ष का विषय है, भारतीय विज्ञान वर्तमान विज्ञान के लगभग समान ही है। भारतीय वैज्ञानिकों के पास वे सब यन्त्र नहीं थे जिनसे आज अन्तरिक्ष को देखने का यत्न किया जा रहा है।

अनन्त स्थान है जिसमें से एक सीमित स्थान में ब्रह्माण्ड (गैलेक्टिक यूनिवर्स) का निर्माण हुआ है। इसमें अनेक 'गैलैक्सी' (हिरण्यगर्भ) हैं और ये अपनी 'गैलेक्सी' से दूर जा रहे हैं। अर्थात् ब्रह्माण्ड फैल रहा है। यह झुका हुआ (curved) है।

भारतीय वैज्ञानिक इसे चमसवत् मानते हैं। (ब्र० सू० १-४-२)

वे यह भी मानते हैं कि अन्तरिक्ष असंख्य नक्षत्रों और ग्रहों से भरा हुआ है। इनके बीच का व्योम भी खाली नहीं। इसमें अनेकानेक प्रकार के मरुत, वायु अग्नि, विद्युत और महत् उपस्थित हैं।

जैमिनीय ब्राह्मण में लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तस्माद् अरं वायु—अस्मिन् अन्तरिक्षे तिर्यङ् पवते ।

(जै० ब्रा० ३-३१०)

(पं० भगवद्दत द्वारा 'वेद-विद्या-निदर्शन' पृष्ठ १७८ से उद्धृत ।)

अर्थात्—उन (अन्तरिक्षों) में से इस अन्तरिक्ष में वायु टेढ़ी बहती है ।

वर्तमान वैज्ञानिक भी अन्तरिक्ष को भरा हुआ मानते हैं ।

इनका एक लेख इस प्रकार है—

'the rarefied cosmic dust thats float in the intersteller space and 'according to Whipple these in tiny dust particles barely one fifty-thousandth of an inch diameter,' exist in the space.

Universe and Dr. Einstein. P—112.

(वही, पृ० १६८)

और भी लिखा है—

Further, it is now known that intersteller space is not quite empty, but is filled by a mixture of gas and fine dust with a mere density of abont 1. mg. matter in 1,000,000 cu. miles space, and this diffuse highly rarefied material apparently has the same chemical constitution as have the sun and the other stars.

Biography of the Earth: P-319

(वही, पृ० १६८)

इन दोनों उद्धरणों का अर्थ इस प्रकार है—

अन्तरिक्ष में 'कॉस्मिक' धूल भरी हुई है और इस धूल के कण का व्यास $\frac{१}{५०००}$ इंच होता है ।

यह भी पता चला है कि अन्तरिक्ष सर्वथा खाली नहीं है । यह एक प्रकार के वायवी पदार्थों के मिश्रण और बहुत बारीक धूल से भरा हुआ है । इस पदार्थ की सघनता (density) इतनी कम है कि दस लाख वर्ग मील स्थान में यह एक मिली ग्राम द्रव्य रखता है । यह विरलित पदार्थ प्रत्यक्ष रूप में वही गुण रखता है जो सूर्य में पदार्थ का है ।

भारतीय वैज्ञानिक इसे आपः के नाम से स्मरण करते हैं । यह कहाँ से बना है तथा इसका क्या स्वरूप है, यह हम अगली कण्डिका में लिखेंगे ।

अन्तरिक्ष के विषय में यह भी लिखा है :—

The cornerstone of cosmogonical theories is the assumption that the system of galaxies scattered through the vast space of the Universe is in the state of progressive expansion or dispersal···

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

For almost three decades after its formulation, the theory of the expanding (or dispersing) universe suffered from an annoying contradiction : the age of the universe, as estimated from the observed rate of expansion (i. e. the mutual recession velocities of galaxies), was cosiderally shorter than the age of Earth as estimated by reliable geological methods, and the age of stars of the Milky Way as given by more recent astrophysical studies. The discrepency was not removed untill 1952 when W. Beade showed that the distances between the galaxies are actually 2.5 times greater than was previously believed.

Ency. Britt. Ed. 1967. Vol. 6. p. 578 b

इसका अर्थ है—वर्तमान कॉस्मोगोनिक वादों का आधार यह है कि ब्रह्माण्ड का फैलाव (गैलैक्सियों का बिखरना) अति विस्तृत अवकाश में हो रहा है।

इन वादों के कहे जाने के तीस वर्ष पीछे तक यह विचार कि ब्रह्माण्ड फैल रहा है अथवा बिखर रहा है, एक असन्तोषजनक विरोधाभास से संदिग्ध था। ब्रह्माण्ड की आयु ब्रह्माण्ड के फैलाव से जिसका अनुमान लगाया गया था, वह आकाश गंगा के तारों की आयु से बहुत कम थी। आकाश गंगा के तारों की आयु का नवीनतम 'ऐस्ट्रोफ़िजिकल' अध्ययन से पता किया गया था। यह विरोध सन् १९५२ में मिट गया जब 'बीडे' ने गैलैक्सियों में अन्तर में गलती का पता किया। उसने पता किया कि गैलैक्सियों में अन्तर २.५ गुणा अधिक है।

इस कथन में एक तो हेत्वाभास यह है कि नयी बात पुरानी की गलती को दूर करने के उद्देश्य से की गयी प्रतीत होती है। दूसरा यह कहना कहाँ तक ठीक है कि गैलैक्सियों के फैलाव की गति एक समान रही है। यह अधिक सम्भव है कि अण्डे के फटने के समय अण्डे के टुकड़े पहले अधिक गति से उड़े और अब उनकी गति धीरे-धीरे कम हो रही है।

जितने भी आँकड़े प्रतीत किए गए हैं वे दो बातों पर निर्भर करते हैं। एक तो यह कि यन्त्र जिस सिद्धान्त पर निर्माण किए गए हैं वे कितने ठीक हैं? दिनानुदिन यन्त्रों में उन्नति हो रही है। दूसरी बात हमने ऊपर बतायी है। इनके साथ यन्त्रों से प्रतीत किये आँकड़ों से परिणाम अनुमान का विषय हैं और इनमें अनुमान का आधार ठीक है अथवा नहीं, कहा नहीं जा सकता।

इस पर भी इतना तो दोनों, भारतीय तथा पाश्चात्य विज्ञानों में सहमति है कि जब अण्डा फटा तो अण्डे के टुकड़े उड़कर बाहर को फेंके गये और वे अरबों वर्ष से सतत (फटने की शक्ति से) बाहर को धकेले जा रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: २ :

जगत्-रचना की प्रक्रिया

यह ब्रह्माण्ड किस मूल पदार्थ से बना है, अभी तक वर्तमान युग के वैज्ञानिकों को पता नहीं चला। न ही वे ऊर्जा (energy) और जड़ पदार्थ (matter) में अन्तर पता कर सके हैं। इनमें विचार का आधार बदलता रहता है। कभी कण (quantum) वाद की ओर झुकाव हो जाता है और कभी लहर (waves) वाद की ओर।

उनके लिए कठिनाई यह है कि वैज्ञानिकों की युक्ति करने की शक्ति ढ़ीली है और उनके दार्शनिक वैज्ञानिकों के पिछलग्गू हो गये हैं। उन्होंने अपना कार्य वैज्ञानिकों के हाथ में दे रखा है।

भारतीय विज्ञान-शास्त्र को दर्शनशास्त्र से पृथक् नहीं माना जाता। ये एक दूसरे के पूरक हैं।

हम पूर्व की कण्डिका में मनुस्मृति का एक श्लोक (१-५) दे आये हैं। उसमें हमने मूल प्रकृति के स्वरूप का वर्णन किया है। यह अन्धकार मय, इन्द्रियों से न जानी जा सकने वाली, लक्षणों से रहित, तर्क के आयोग्य और सर्वत्र सोयी हुई सी है।

एक असत् (without form) 'सुषुप्त इव' अर्थात् सोयी हुई वस्तु को अंग्रेजी में 'inert matter' कहा जा सकता है। ऐसी कोई वस्तु है ? यह वर्तमान वैज्ञानिक अपनी खोज के अन्तर्गत नहीं मानते।

सब भारतीय शास्त्रों में इसे इसी प्रकार वर्णन किया है। वेद (ऋक्० १० १२९-१,२) में भी इसी प्रकार वर्णन किया गया है।

सांख्य दर्शन इसे सत्त्व, रजस्, तमस् गुणों की साम्यावस्था कहकर इसके अप्रज्ञात होने का कारण वर्णन करता है—

सत्त्व रजस् तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। (सां-१-६१)

इसे इस प्रकार वर्णन किया जाता है। मूल प्रकृति (प्राइम-और्डियल मैटर) परमाणु रूप है। इसके कण हैं और यह पूर्ण अम्बर में भर रहे हैं।

प्रकृति का परमाणु वर्तमान वैज्ञानिकों का ऐटम नहीं। ऐटम पदार्थों का सबसे छोटा टुकड़ा नहीं। यह टूटता देखा जा रहा है और इसके छोटे टुकड़ों के गुण, कर्म, स्वभाव का पता किया जा चुका है।

परमाणु का विभाजन नहीं हो सकता। इस पर भी भारतीय दार्शनिक कपिल मुनि कहते हैं कि प्रत्येक परमाणु में तीन गुण रहते हैं। इनके नाम हैं सत्त्व,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रजस् और तमस् । ये प्रकृति की मूलावस्था में साम्यावस्था में रहते हैं । अर्थात् परमाणु के भीतर ही एक-दूसरे के प्रभाव को विलीन करते हैं । साम्यावस्था को 'balanced state' कहा जा सकता है ।

इन गुणों का स्वरूप भी वर्णन किया है । वहाँ कहा है—

लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम् ।। (सां० १-१२८)

अर्थात्—छोटे होने में तीनों गुण समान हैं ।

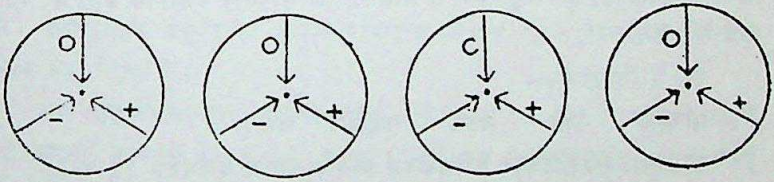
परन्तु प्रभाव परस्पर विरोधी हैं । लिखा है—

प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम् ।। (सां० १-१२७)

अर्थात्—विभिन्नता है । एक आकर्षण (attraction) करता है तो दूसरा विकर्षण (repulsion) करता है और तीसरा विषाद गुण वाला (neutral) है ।

गुणों का यह वैधर्म्य परमाणु के भीतर ही विलीन हो जाता है । यह परमाणु की साम्यावस्था कही जाती है ।

इस अवस्था को यदि चित्रित किया जाय तो यह इस प्रकार बन जायेगी—



प्रत्येक परमाणु के तीन विभाग किये हैं । वे आकार-विस्तार के विषय में समान हैं । उनमें आकर्षण, विकर्षण और विषाद को प्रकट करने के लिए धन (+) ऋण (—) शून्य (०) के चिह्न बनाये हैं । तीरों के चिह्नों से उनकी प्रभाव दिशा का संकेत किया है । वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इनको negative, positive, neutral के नाम दिये जा सकते हैं ।

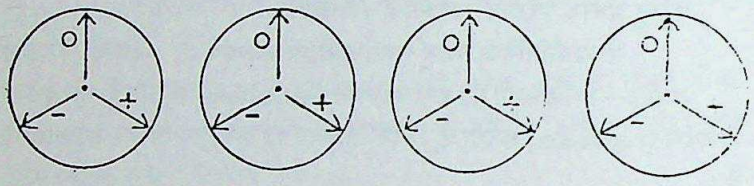
यह परस्पर आकर्षण-विकर्षण भंग होता है तो सृष्टि-रचना आरम्भ होती है । इस साम्यावस्था को भंग करने वाले का नाम वेद में प्राण कहा है । वहाँ लिखा है (ऋ०- १०-१२९-३) कि प्राण ही इन गुणों के संतुलन को भंग करने की सामर्थ्य रखता है । मीमांसा (logic) का एक सिद्धान्त है कि गुण गुणी से पृथक् नहीं हो सकता । अतः परमाणुओं में गुणों का सन्तुलन टूटने में कारण यह नहीं कि कोई गुण न्यूनाधिक हो जाता है अथवा परमाणु के बाहर निकल जाता है, वरन् यह इस प्रकार है कि प्रकृति की सुषुप्त अवस्था में परमाणुओं के गुण,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमाणु के भीतर ही परस्पर विलीन हो रहे होते हैं। ये अन्तर्मुखी होते हैं। प्राण के प्रभाव से इनकी प्रभाव-दिशा परमाणु के भीतर को रहने के स्थान बाहर को हो जाती है। परमाणुओं के पूर्व में दिये चित्र में गुणों के प्रभाव को तीरों से प्रकट किया है जो परस्पर एक-दूसरे को विलीन करते हैं।

वह अवस्था, जो प्राण के प्रभाव से उत्पन्न होती है, इस प्रकार चित्रित की जा सकती है—



इन गुणों की प्रभाव दिशा परमाणु के भीतर ही परस्पर विलीन होने के स्थान बाहर पड़ोस के परमाणुओं को आकर्षित करने लगती है।

पूर्व इसके कि हम बतायें कि आकर्षण-विकर्षण पड़ोसी परमाणुओं में होने पर क्या होता है, हम यह बताना चाहते हैं कि भारतीय वैज्ञानिक प्राण का क्या अर्थ लेते हैं।

वेद में लिखा है—

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ (अथर्व० ११-४-१)

अर्थात्—उस प्राण को नमस्कार है जिसके वश में समस्त संसार है जो स्वयंभू है, सबका ईश्वर है और जिसमें सब-कुछ प्रतिष्ठित है।

यहाँ प्राण और परमेश्वर को पर्यायवाचक कहा है।

यही भाव मनुस्मृति में भी प्रकट किया गया है। वहाँ कहा है—

योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनात न।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एवं स्वयमुद्बभौ॥
सोऽभिध्याय शरीरात्स्वात्सिसृक्षुर्विविधाः प्रजाः।
अप एव ससर्जाऽऽदो तासु बीजमवासृजत्॥ (मनु० १-७, ८)

अर्थात्—जो वह (परमात्मा) अतीन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों से न ग्रहण हो सकने वाला, अनादि है, सब भूतों का आत्मा है, वह स्वयं ही है। वह स्वयं ही प्रकट हुआ अर्थात् कार्य करने लगा।

उस परमात्मा ने अनेक प्रकार की सृष्टि रचने का ध्यान किया। ध्यान

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने से उसमें (प्रकृति में) शक्ति रूप बीज डाला। यह और उनके पीछे सृष्टि हुई।

इससे स्पष्ट है कि आपः की रचना में प्राण का अभिप्राय परमात्मा का तेज ही है।

प्रकृति से आपः बनता है। इसे सांख्य दर्शनाचार्य महान् के नाम से स्मरण करता है। वहाँ लिखा है—

'प्रकृतेर्महान्।' (सां० १-६१)

यह नाम भेद उसके विभिन्न गुणों के कारण है। वह जो पदार्थ बना, बहुत ही विस्तृत क्षेत्र में बना था और उससे ही सब जगत् के पदार्थ बने हैं। इस कारण कपिल मुनि उसे महान् के नाम से स्मरण करते हैं।

प्रकृति का यह प्रथम परिणाम तरलावस्था में था। तरल उसको कहते हैं जो अपना आयतन (volume) तो स्थिर रखे, परन्तु अपना आकार स्थिर न रख सके। जैसे जल होता है। एक लोटे का जल गिलास में तथा कटोरे में भी डाला जा सकता है। वही जल जो पहले लोटे की आकृति में था, गिलास अथवा प्याले में इनके आकार का हो जाता है। अतः जल भी तरल (liquid) है। इसी प्रकार प्रकृति का प्रथम परिणाम भी एक तरल पदार्थ था और इसे आपः कहा जाता है।

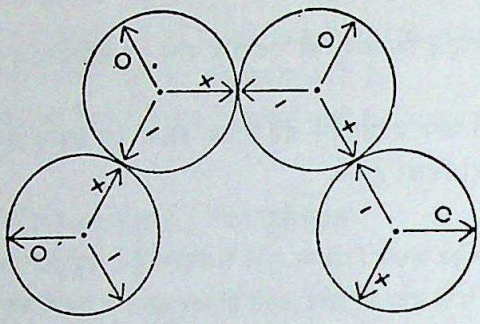
वह महत् अथवा आपः वायवी पदार्थ नहीं है। कारण यह कि वायवी पदार्थ तो अपना आयतन (volume) स्थिर नहीं रख सकते। यदि यह वायवी अवस्था में होता तो अनन्त अन्तरिक्ष में फैल जाता और तब जगत्-रचना न हो सकती।

अतः महत् को आपः (जलीय) माना है।

ऊपर चित्र २ में हमने परमाणुओं की वह अवस्था चित्रित की है जो महत् बनने पर हो सकती है। इसमें गुणों का मुख (प्रभाव) परस्पर उदासीनीकरण (neutralization) का न रहकर बहिःमुख हो जाता है। तब ये आकर्षण-विकर्षण पड़ोसी परमाणुओं को करने लगते हैं और परमाणुओं की लड़ियाँ बनने लगती हैं। इनका चित्र इस प्रकार का हो जाता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



यह आकर्षण-विकर्षण वैसा ही है जैसा कि विद्युत का धन, ऋण और शून्य तारों में होता है।

ये परमाणु-समूह अणु कहलाते हैं। इन परमाणु समूहों के होने पर भी प्रकृति की इस अवस्था का नाम महत् ही कहलाता है। यह अभी भी अतीन्द्रिय है। इसमें रूप और रंग अभी उत्पन्न नहीं हुआ। कारण यह कि रूप, रंग वायु उत्पन्न करता है। वैशेषिक दर्शन में यह बताया गया है—

सत्यपिद्रव्यत्वे महत्त्वे रूपसंस्काराभावाद् वायोरनुपलब्धिः ॥ (४-१-७)

अर्थात्—महत् से द्रव्य बन जाने पर भी उसमें रूप और संस्कार उत्पन्न नहीं होते, वायु के उपलब्ध न होने के कारण।

महत् से अणु (परमाणुओं की लड़ियाँ) तो बन जाते हैं, परन्तु उनके रूप और संस्कार नहीं होते।

रूप का अर्थ है लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई इत्यादि अर्थात् form; और संस्कार का अभिप्राय है उनका प्रभाव इन्द्रियों पर अर्थात् ये परमाणु की लड़ियाँ रूप-रहित और इन्द्रियों से न जानी जाने योग्य होती हैं।

वायु के अभाव से—यहाँ वायु का अभिप्राय वायु-मण्डल की हवा से नहीं जो ऑक्सीजन और नाइट्रोजन का मिश्रण है। वायु को उपनिषदों में एक शक्ति के रूप में माना गया है जिससे गति उत्पन्न होती है। इन परमाणुओं की लड़ियों में अभी गति उत्पन्न नहीं हुई। इस कारण उनका रूप और संस्कार नहीं है।

इसका यह भी अभिप्राय है कि जब ये अणु गतिशील होते हैं तो रूप की उपलब्धि होती है। इसे वैशेषिक दर्शन में इस प्रकार लिखा है—

अनेकद्रव्यसमवायाद् रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः ॥ (वै० द० ४-१-८)

अर्थात्—अनेक द्रव्यों के समवाय से (मिलने से) और उनकी विशेषता से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रूप की प्राप्ति होती है।

जब तक परमाणु समूह बनते रहते हैं उनके रूप नहीं निकलते। छोटे-बड़े कई प्रकार के समूह बनते रहते हैं। वैशेषिक दर्शन में लिखा है—

अणोर्महतश्चोपलब्ध्यनुपलब्धी नित्ये व्याख्याते ॥ (वै० द० ७-१-८)

अणु की महत् से उपलब्धि और न उपलब्धि नित्य होती रहती है। ऐसा कहा जाता है।

इसका अर्थ है कि महत् से अणु बनते हैं और नहीं भी बनते। यह इस कारण कि जब पड़ोसी परमाणु आकर्षण की सीमा में आते हैं तो आकर्षित हो जाते हैं और अणु बन जाते हैं, अन्यथा नहीं बनते।

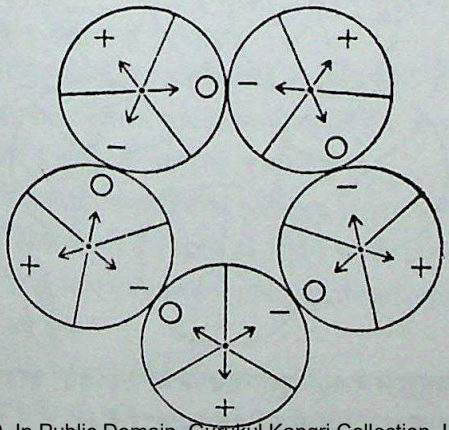
यह महत् में जो परमाणु होते हैं उनके कर्म और गुण के कारण होते हैं। यदि जो दो परमाणु विपरीत गुण की ओर से समीप हुए तो आकर्षण हो अणु बन जाते हैं और यदि दो परमाणु सम गुण की ओर से समीप हुए तो आकर्षण के स्थान विकर्षण हो जाता है और अणु नहीं बनते। यह है अभिप्राय गुण, कर्म का।

इससे एक अन्य सम्भावना भी होती है। लिखा है—

(एतेनदीर्घत्वह्रस्वत्वे व्याख्याते ॥ (वै० द० ७-१-१७)

इससे (अर्थात् आकर्षण-विकर्षण से) अणुओं में बड़ापन और छोटापन उत्पन्न होता है। अभिप्राय यह कि कभी तो बड़े-बड़े परमाणु समूह बन जाते हैं और कभी छोटे-छोटे बनते हैं।

महत् से बनने वाले परमाणु समूहों को अहंकार कहते हैं। मुख्य रूप में अहंकार तीन प्रकार के बनते हैं। वे परमाणु समूह जिनमें सत्त्व गुण प्रधान रहता है, ऐसे एक समूह का चित्र हम नीचे देते हैं।

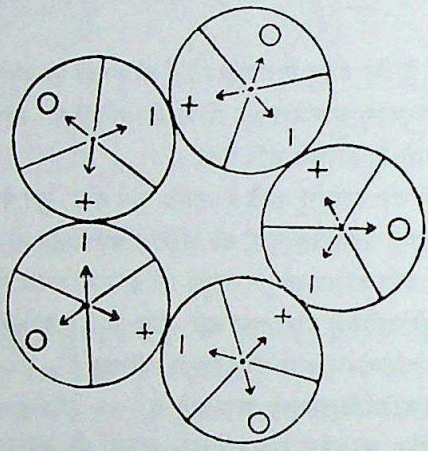


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

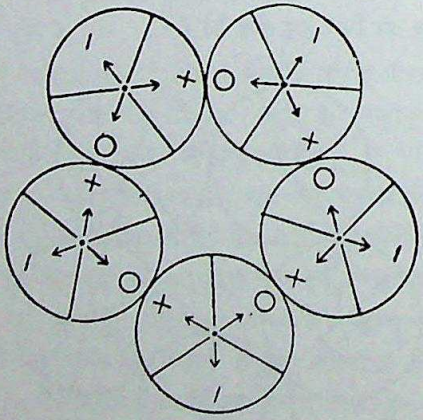
इस परमाणु-समूह में रजस् और तमस् गुण परमाणुओं के दूसरे परमाणुओं के तमस् और रजस् से विलीन किए जा रहे हैं और पूर्ण परमाणु समूह में सत् गुण शेष रह जाता है। ऐसे परमाणु समूह सतोगुण प्रधान अहंकार कहलाते हैं। इनका नाम वैकारी अहंकार है।

अब एक तमोगुण प्रधान परमाणु समूह का चित्र देखिये।



इस परमाणु-समूह में सत्त्व और रजस् परस्पर विलीन हो रहे हैं और तमस् शेष बचा है। ऐसा परमाणु समूह तमोगुण प्रधान अहंकार अर्थात् भूतादि अहंकार कहलाता है।

अब रजस् गुण प्रधान परमाणु समूह का चित्र देते हैं—



इस परमाणु समूह में रजस् गुण शेष बचा है। इस कारण यह रजोगुण प्रधान अहंकार कहलाता है। अर्थात् तैजस् अहंकार है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार अभी तक हमने यह बताया है कि प्रकृति से महत् कैसे बनता है और उसका स्वरूप क्या है? महत् ह्रस्व और दीर्घ परमाणु समूह कैसे बनते हैं? तदनन्तर वे समूह ऐसे बनने लगते हैं जिनमें सत्त्व गुण प्रधान होता है, अथवा तमस् गुण प्रधान होता है अथवा रजस् गुण प्रधान होता है। ये तीन प्रकार के अहंकार हैं।

इन अहंकारों के नाम इनके बड़ा-छोटे होने के कारण नहीं, वरन् इनके प्रधान गुण के कारण हैं।

कभी इन अहंकारों के परस्पर ऐसे समूह बन जाते हैं कि उनमें तीन प्रकार के अहंकार कार्य करने लगते हैं। वैकारी अहंकार और भूतादि अहंकार बीच में आ जाते हैं और तैजस् अहंकार इनके चारों ओर चक्कर काटने लगते हैं। इस प्रकार के संयोग से जो वस्तु बनती है, वह परिमण्डल कहलाती है।

इसके विषय में यह लिखा है—

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ॥

(ब्र० सू २-२-११)

अर्थात्—महत् से ह्रस्व अथवा दीर्घ की भांति उनसे परिमण्डल बनते हैं।

अब वर्तमान विज्ञान के साथ उक्त विवेचना की तुलना करें तो पता चलेगा कि—

(१) मूल है प्रकृति जिसे गुणों की साम्यावस्था कहा है। इसको वर्तमान युग के वैज्ञानिक नहीं जानते। ये वहाँ तक अभी नहीं पहुँचे। वे केवल यह समझे हैं कि मैटर तथा ऐन्टि-मैटर मिलकर अप्रज्ञात अवस्था बन जाती है। यह हम आगे चलकर लिखेंगे।

(२) महत्; यह प्रकृति की वह अवस्था है जिसमें गुण बहिःमुख होते हैं। इसे भी वर्तमान विज्ञान अभी नहीं जानता।

(३) परमाणु समूह जिन्हें अणु भी कहते हैं, ये ह्रस्व और दीर्घ कई परिमाण के होते हैं। इनका वर्तमान वैज्ञानिक अनुमान ही करते हैं। वे इसे 'कौस्मिक-रे' अथवा 'कौस्मिक-डस्ट' इत्यादि के नामों से पुकारते हैं।

वर्तमान काल में 'कौस्मिक पार्टिकल' (cosmic particles) सूर्य से निकल रहे कहे जाते हैं। सूर्य में अभी भी वे क्रियाएँ हो रही हैं जो हिरण्यगर्भ में होती रही हैं; और महत्, दीर्घ, ह्रस्व और फिर उनसे वैकारी, भूतादि और तैजस् अहंकार—ये सब हिरण्यगर्भ में बने हैं।

(४) अहंकारों को वर्तमान वैज्ञानिक जानते हैं। वे इन्हें इलेक्ट्रोन, प्रोटोन और न्यूट्रोन कहते हैं। ये भी छोटे-बड़े होते हैं। इनमें भेद इनके छोटे-बड़े होने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से नहीं होता, वरन् इनके गुण सत्त्व (+) रजस् (—) अथवा तमस् (०) के कारण होता है।

(५) अहंकारों के वैवर्त में आ जाने को परिमण्डल कहते हैं। वर्तमान युग के वैज्ञानिक इसे जानते हैं। वे परिमण्डलों को ऐटम कहते हैं। ये वैज्ञानिक यह मानते हैं कि ऐटम में न्यूट्रोन (भूतादि अहंकार) और प्रोटोन (वैकारी अहंकार) केन्द्र में होते हैं और इलैक्ट्रोन (तैजस् अहंकार) उनके चारों ओर घूम रहे हैं। परिमण्डल (ऐटम) छोटे-बड़े कई प्रकार के हैं। वर्तमान वैज्ञानिक इन्हें १०३ प्रकार के मान चुके हैं। इन १०३ प्रकार के ऐटमों के अतिरिक्त इनके 'आईसो-टोप्स' भी होते हैं। इस प्रकार ये कई सौ प्रकार के हैं।

(६) इन ऐटमों के संयोगों-वियोगों का, वर्तमान काल के वैज्ञानिकों ने बहुत अध्ययन किया है और वास्तव में आज की विज्ञान कला (technology) की उन्नति अधिकांश इस अध्ययन का ही परिणाम है।

परिमण्डलों के संयोग-वियोगों की विद्या को रसायन शास्त्र (कैमिस्ट्री) कहते हैं। भारतीय वैज्ञानिकों को भी इस विद्या का कुछ ज्ञान था।

उदाहरण के रूप में परिमण्डलों के विषय में यह ज्ञात था कि जब ये मिलते हैं अथवा मिले हुए पृथक्-पृथक् होते हैं, तो टूटते नहीं।

ब्रह्मसूत्र में इनके विषय में इस प्रकार लिखा है—

समुदाय उभयहेतुकेऽपि तदप्राप्तिः ॥

(ब्र० सू० २-२-१८)

इसका अभिप्राय है कि परिमण्डलों के समुदाय में दोनों प्रकार से अर्थात् संयोग और वियोग में उन (परिमण्डलों) का कोई हेतु नहीं।

अर्थात् संयोग-वियोग से परिमण्डलों में कुछ अन्तर नहीं पड़ता।

और भी कहा है—

प्रतिसंख्याऽप्रतिसंख्यानिरोध प्राप्तिरविच्छेदात् ॥

(ब्र० सू० २-२-२२)

इसका अभिप्राय यह है कि जब रासायनिक क्रिया में परिमण्डलों का आदान-प्रदान होता है तो इनकी संख्या, प्रतिसंख्या में अन्तर नहीं पड़ता। उनमें विच्छेद न होने से।

और भी लिखा है—

इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ॥

(ब्र० सू० २-२-१९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ (chemical compounds) में परिवर्तन के समय क्या परिमण्डल एक दूसरे का कारण होते हैं ? सूत्रकार कहता है कि नहीं।

कारण यह कि कारण विलीन होता है और कार्य बनता है। परन्तु रासायनिक क्रियाओं में परिमण्डल कारण-कार्य सम्बन्ध नहीं रखते। अर्थात् परिमण्डल (atoms) ज्यों के त्यों बने रहते हैं।

रासायनिक क्रियाओं के ये सब नियम आजकल भी ज्ञात हैं।

इसी कारण हम कहते हैं कि ऐटम से संयुक्त पदार्थ (compounds) बनने तथा रासायनिक क्रियाओं के मुख्य-मुख्य नियम भारतीय वैज्ञानिकों को भी विदित थे।

(७) पदार्थों की तीन अवस्थाओं (ठोस, तरल, वायवी) के विषय में भी भारतीयों को मुख्य रूप में ज्ञात था कि ये क्या हैं।

भारतीय विज्ञान यह मानता है कि परिमण्डल और संयुक्त पदार्थों के अणु (atoms and molecules) सूक्ष्म पंच महाभूत कहलाते हैं। स्थूल वह अवस्था है जिसमें ये ठोस, तरल और वायवी अवस्था में दिखाई देने लगते हैं।

परिमण्डलीय (atomic) अवस्था अथवा आण्विक (moleculer) अवस्था सूक्ष्म भूत कहलाती है। स्थूल भूत पांच हैं। इनकी गणना पाँच किस प्रकार की गयी है ? यह विचारणीय है।

इस विषय पर विचार करने से पूर्व पाश्चात्य विज्ञान के अनुसार ठोस, तरल और वायवी में क्या अन्तर है, समझ लेना चाहिए।

यह माना जाता है कि प्रत्येक परिमण्डल अथवा संयुक्त पदार्थ का अणु (molecule) प्रत्येक (वायवी, तरल और ठोस) अवस्था में अपने एक केन्द्र पर स्पन्दन (vibrate) करता रहता है। यहाँ परिमण्डल के भीतर वाली (interatomic) (तैजस् अहंकार) गति से अभिप्राय नहीं। ऐटम समूचा अथवा जब यह दूसरे ऐटमों से संयुक्त हो जाता है, तब अपने एक केन्द्र पर स्पन्दन करता रहता है। यह स्पन्दन तापमान के बढ़ने (rise of temperature) से गति में और परिधि में बढ़ जाता है।

प्रत्येक परिमण्डल अथवा परिमण्डल-समूह का स्पन्दन एक ही तापमान पर भिन्न-भिन्न होता है।

उदाहरण के रूप में ऑक्सीजन वायु में O_2 परिमण्डल समूह सामान्य तापमान में इतने वेग से स्पन्दन कर रहे होते हैं कि उस स्पन्दन में वे अपने केन्द्र के साथ बँधे नहीं रहते और भटक जाते हैं। परिणाम यह होता है कि यदि O_2 को किसी सिलैण्डर इत्यादि में बन्द न करें तो ये जहाँ-जहाँ इनको स्थान मिलता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैल जाते हैं। यही कारण है कि वे सब पदार्थ जो जब वायवी अवस्था में होते है उनके परिमण्डल अथवा परिमण्डल समूह (molecule) इतने वेग से स्पन्दन कर रहे होते हैं कि यदि कोई बांधकर रखने वाला बर्तन न हो तो वह वायवी पदार्थ अपना volume स्थिर नहीं रख सकता। जितना स्थान उसे मिले उसमें फैल जाता है।

इस वायवी पदार्थ को ठण्डा करने से इसके स्पन्दन को कम किया जा सकता है। इतना कम भी कर सकते हैं कि तब इसके परिमण्डलादि सहज ही किस बर्तन में रखे जा सकते हैं। तब यह तरल अवस्था में हो जाता है।

और भी ठण्डा करने से यह ठोस अवस्था में भी हो सकता है। ऐसी अवस्था में परिमण्डल का स्पन्दन इतना दुर्बल और कम परिधि में रह जाता है कि यह अपने साथी परिमण्डलों को छोड़ भी नहीं सकता।

यह है विवेचना वर्तमान विज्ञान की पदार्थों की तीन अवस्थाओं (three states of matter) की।

भारतीय विज्ञान में भी कुछ इसी प्रकार माना जाता है। कुछ अन्तर भी है। प्रथम अन्तर तो यह है कि पदार्थों के बनाने वाले कण (ह्रस्व और दीर्घ) भी हैं, केवल परिमण्डल ही नहीं।

हमने बताया है कि ये कण अन्तरिक्ष में विद्यमान हैं। इनमें ह्रस्व और दीर्घ परमाणु समूह जब ऐसे होते हैं जिनमें आकर्षण-विकर्षण कुछ नहीं होता और जो परिमण्डल के बनाने में भाग नहीं ले रहे होते तो वे पूर्ण अन्तरिक्ष में फैले हुए हैं। अतः ऐसे परमाणु समूह भी ब्रह्माण्ड में हैं। इनको भारतीय वैज्ञानिक 'आकाश' के नाम से स्मरण करते हैं। यह आकाश भी एक प्रकार का निर्मित पदार्थ ही माना जाता है और पंच महाभूतों में एक है।। अन्य महाभूतों से यह सूक्ष्म है।

यह महाभूत दृश्यमान् जगत् में दिखायी नहीं देता, अर्थात् यह दृश्यमान् नहीं है। इस पर भी इस जगत् में इसका एक कार्य है। यह शब्द-वाहक (transmitter of waves) माना जाता है। शब्द-वाहक का अर्थ है वह माध्यम, जिसमें रश्मियां चल सकती हैं। तरंगों से ही उर्जा (energy) एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती हैं। आकाश इन तरंगों के चलने में सहायक होता है।

अन्तरिक्ष आकाश से भरा हुआ है। यह प्रकाश, विद्युत, ताप और शब्द तरंगों की गति में माध्यम का कार्य करता है।

वर्तमान युग के वैज्ञानिक इसकी उपस्थिति अब मानने लगे हैं। यद्यपि उनसे स्वीकार किया गया स्वरूप वह नहीं, जो भारतीय वैज्ञानिकों का है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंच महाभूतों में तीन तो मैटर (पदार्थों) के वे तीन रूप हैं जो परिमण्डलों अथवा परिमण्डल-समूहों (atoms and molecules) से बनते हैं। ये हैं वायवी, जलीय और ठोस। ये पदार्थों की तीन अवस्थाएँ हैं। ये कोई एक पदार्थ नहीं हैं।

जैसा कि हम बता चुके हैं कि ये अवस्थाएँ परिमण्डलों के स्पन्दन (vibration) की त्रिज्या पर निर्भर करती हैं। स्पन्दन-केन्द्र इनको अपने स्थान से बाँधे हुए हैं। जब त्रिज्या बड़ी हो जाती है तो परिमण्डल परस्पर बँधे नहीं रहते, यद्यपि अपने केन्द्र से बँधे होते हैं। यह तरलावस्था हो जाती है। जब त्रिज्या (radius) इतनी छोटी होती है कि परिमण्डल इत्यादि स्पन्दन केन्द्र से बँधने के साथ-साथ परिमण्डलों इत्यादि से भी जकड़े रहते हैं तो अवस्था ठोस होती है।

वायवी अवस्था तब होती है जब स्पन्दन की त्रिज्या इतनी बड़ी हो जाती है कि पड़ोसी परिमण्डल इत्यादि से सम्बन्ध छूटने के साथ केन्द्र से भी सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है और यदि इस अवस्था में परिमण्डलों को किसी स्थान पर बाँध कर न रखा जाये तब वे बेलगाम जानवरों की भाँति जिधर चाहें, चल देते हैं।

स्पन्दन की त्रिज्या प्रत्येक पदार्थ के परिमण्डलों अथवा परिमण्डल समूहों में पृथक्-पृथक् होती है, परन्तु इसके न्यूनाधिक होने में तापमान कारण होता है। भारतीय विज्ञान इस बाँधने वाली शक्ति को एक प्रकार की तन्मात्रा कहते हैं।

यह कहा जाता है कि अहंकारों में से तन्मात्राएँ उत्पन्न होती हैं। ये पाँच प्रकार की हैं और इन पाँच का प्रभाव यह होता है कि सूक्ष्म भूत स्थूल हो जाते हैं।

यद्यपि इन पाँच प्रकार की तन्मात्राओं के कार्य पृथक्-पृथक् नहीं लिखे गये, तथापि इनकी कल्पना की जा सकती है।

मुख्य रूप में इनका कार्य जगत् के पदार्थों को स्थूलत्व देना है। ये किसी प्रकार के पदार्थ नहीं हैं। कारण यह कि अपना कार्य कर ये विनाश को प्राप्त हो जाती हैं। यह कल्पना की जा सकती है कि ये शक्ति तरंगें हैं और अपना कार्य कर इनकी समाप्ति हो जाती है। तब यह शक्ति कार्य में परिवर्तित हो जाती है। जैसे कि विद्युत तरंग प्रकाश करने के लिये प्रयोग की जाती है। तब विद्युत प्रकाश में समाप्त हो जाती है।

यही इन तन्मात्राओं के विषय में कहा जा सकता है। यह हमारी कल्पना है कि ये एक प्रकार की तरंगें हैं जिनके कारण परिमण्डल बनते हैं। इसे इलैक्ट्रोन (तैजस् अहंकार), न्यूट्रोन (भूतादि अहंकार) तथा प्रोटोन (वैकारी अहंकार) का आकर्षण-विकर्षण कहें अथवा कुछ अन्य कहें। परिमण्डल बनते हैं और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फिर सुगमता से टूट नहीं सकते। कोई शक्ति इन्हें बनाती है और बाँधे रखती है, यह एक प्रकार की तन्मात्रा है।

दूसरी प्रकार की तन्मात्रा है जिससे परिमण्डल अथवा परिमण्डल-समूह (atoms and molecules) अपने केन्द्र पर स्पन्दन करते हैं, जिनसे इनकी ठोस, तरल तथा वायवी स्थिति बनती है।

तीसरी प्रकार की तन्मात्रा है जिसे रासायनिक आकर्षण (chemical afinity) कहते हैं।

चौथी प्रकार की तन्मात्रा है जिसे भू-आकर्षण (gravity) कहते हैं और पाँचवीं प्रकार की तन्मात्रा है जिसे चुम्बकीय शक्ति कहते हैं।

इस विषय में विचारणीय यह है कि ये सब किस प्रकार स्थूल जगत् बनाने में सहायक होती हैं।

पंच महाभूतों में एक महाभूत है अग्नि। इस विषय में हमारा यह कहना है कि जब कोई पदार्थ अपने में अग्नेय शक्ति (वह शक्ति जिसके विनिर्मुक्त होते ही ऊर्जा प्रकट हो) रखे, उस पदार्थ को अग्नेय भूत कहा है। इसमें वह एक पदार्थ आ जायेगा जो अति सुगमता से विघटित हो अथवा किसी अन्य द्रव्य से संयुक्त हो ताप निर्माण करते हैं। सोडियम एक उदाहरण है। इस पंच महाभूत में स्व-विघटित परिमण्डल भी आ जाते हैं, जैसे रेडियम इत्यादि।

इस कण्डिका में हमने अभी तक यह बताया है कि प्रकृति से महत्, महत् से अहंकार, अहंकारों से सूक्ष्म पंच महाभूत और फिर तन्मात्राओं की सहायता से स्थूल महाभूत बनते हैं।

जब स्थूल महाभूत बन जाते हैं तब जगत् में नाना प्रकार के पदार्थ बनते हैं।

प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि प्रकृति से पंच महाभूत बनने की प्रक्रिया कब हुई और कहाँ हुई? हम अगली कण्डिका में इसका वर्णन करेंगे।

: ३ :

जगत् रचना का काल और स्थान

यह हम ऊपर बता चुके हैं कि अनन्त अंतरिक्ष में एक सीमित स्थान में रचना आरम्भ होती है। इसका अर्थ यह है कि इस ब्रह्माण्ड के पार भी स्थान (space) है। इसे दर्शन शास्त्रों में अम्बर अथवा व्योम लिखा है।

व्योम के एक सीमित स्थान पर ही रचना कार्य आरम्भ हुआ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह स्थान कितना लम्बा-चौड़ा था, कहना कठिन है। कारण यह कि वर्तमान ब्रह्माण्ड (universe) तो फैल रहा है। इसका फैलना उस स्थान से आरम्भ हुआ, जहाँ वह महान् अण्डा बना था। ब्रह्माण्ड के फैलने को देखकर यह कहा जा सकता है कि वर्तमान ब्रह्माण्ड से वह स्थान छोटा था।

यह एक बिन्दु मात्र था अथवा कई अरबों, पद्मों मील लम्बा-चौड़ा था, ठीक-ठीक कहना कठिन है। हाँ, इतना कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण व्योम नहीं था।

क्या अपनी गैलैक्सी (आकाश गंगा) के बराबर था अथवा इससे भी बड़ा था? हमारा कहना है कि यह इससे भी छोटा था। इसमें हमारी युक्ति वही है जो हमने ऊपर ब्रह्माण्ड के विषय में दी है। आकाश गंगा भी फैल रही है। अर्थात् अण्डा फटने का स्थान इस समय की आकाश गंगा के विस्तार से कम था।

इस पर भी इसमें तीन पदार्थों सूर्य, चन्द्र, तारागणों तथा अन्य हिरण्यगर्भों का विचार कर यह कहना किसी प्रकार भी अतिशयोक्ति नहीं हो सकती कि वह स्थान जहाँ जगत्-रचना का कार्य आरम्भ हुआ, कई लाखों मील से कम नहीं हो सकता।

ऐसा कहा जाता है कि परमात्मा ने जगत्-रचना की कामना की और उसने प्रकृति के गर्भ में अपने तेज का वीर्य डाला और वहाँ रचना आरम्भ हो गयी।

यह हमने बताया है कि प्रकृति के परमाणु सर्वत्र विद्यमान हैं। परन्तु रचना-कार्य एक सीमित स्थान पर ही आरम्भ हुआ और वहाँ के परमाणुओं में सत्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था भंग हुई।

साम्यावस्था भंग होने का अर्थ हम बता चुके हैं। परमाणुओं के गुण अन्तर्मुखी होने के स्थान बहिर्मुखी हो गये और सृष्टि रचना आरम्भ हुई।

सबसे पहले महत् बना। महत् का स्वरूप हम वर्णन कर चुके हैं। इसे आपः भी कहा है। आपः का अर्थ जल भी है। इसका ठीक नाम सलिल है। वह पूर्ण स्थान जिसमें रचना-कार्य आरम्भ हुआ, वह आपः से परिपूर्ण हो गया। यह समुद्र का-सा था। ब्राह्मण ग्रन्थों में सलिल को समुद्र कहा है। उपनिषदों में भी इसे समुद्र ही माना है। बाईबल और मैसापटोमियाँ इत्यादि ग्रन्थों में इसे सी (sea) कहा है।

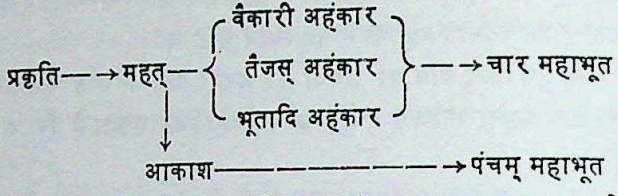
यह पृथिवी पर के समुद्रों की भाँति जल (water) का समुद्र नहीं था।

हमने यह ऊपर बताया है कि आपः इस विचार से एक तरल पदार्थ था, क्यों कि यह जल की भाँति अपना आयतन (volume) तो स्थिर रखे हुए था, परन्तु आकृति (shape) बदल रहा था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उस समय इसकी आकृति एक चमस् की भांति थी। उस चमस् के गड्ढे में वे सब परिवर्तन होते रहे जो हमने पूर्व की कण्डिका में वर्ण किए हैं। अर्थात्—



उस समय यह एक अण्डे की भांति एक बंद स्थान था। यह भारतीय विज्ञान कहता है कि इसमें ब्रह्म दिन का एक सौवाँ काल तक लगा।

ब्रह्म दिन की अवधि ४,३२,००,००,००० सौर वर्ष की बतायी जाती है। इसे देव आयु कहते हैं और इस देव आयु का एक वर्ष सौवाँ भाग होता है।

अर्थात् ४,३२,००,००० सौर वर्ष लगे। इतने काल तक उक्त वर्णित चमस् के गड्ढे में पूर्व की कण्डिका में कहे परिवर्तन होते रहे।

इसको हिरण्यगर्भ कहा जाता है। इस समय इसमें विस्फोट हुआ और इसमें के बने पदार्थ दूर-दूर फेंके गए। तीन प्रकार के पदार्थ पृथक्-पृथक् हुए, ठोस (पृथिव्यादि), दिवी (नक्षत्रादि) और व्योम (मध्य के पदार्थ)।

इस विस्फोट को हुए १,९२,८५,४९,८३३ वर्ष हो चुके हैं।[1]

आज से १,९२,८५,४९,८३३ वर्ष पूर्व पृथिवी बनी। लगभग उसी समय सूर्य और अन्य तारागण बने।

अन्तरिक्ष के अन्य पदार्थ भी तब ही बने।

कुछ वैज्ञानिक यह भी मानते हैं कि सूर्य मण्डल में सर्व प्रथम सूर्य बना और सूर्य से सौर-परिवार (इसके ग्रह इत्यादि) बना। इनके कथानुसार मुख्य अण्डा फटने के उपरान्त सूर्य में कभी विस्फोट हुआ और तब इसके चारों ओर चक्कर काटने वाले ग्रह इसमें से बने।

परन्तु भारतीय मान्यता वह पहली ही है। अण्डे के फटने के समय ही पृथिवी, दिवि और व्योम बने। तब नक्षत्रों के चारों ओर कई-कई ग्रह उनकी लपेट में आ गए।

जिस समय अण्डे में विस्फोट होने के कारण पृथिवी बनी, उसी समय ये सूर्य

---

१. इसका विस्तृत वर्णन पढ़ने के लिए देखें लेखक की अन्य रचना 'इतिहास में भारतीय परम्पराएं।'

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के आकर्षण क्षेत्र में आ सूर्य के चारों ओर घूमने लगी। तब पृथिवी अति गरम और अर्ध पिघली अवस्था में थी। समय पाकर यह ठण्डी हुई।

इसके ठण्डा होने पर पृथ्वी के भीतर से ज्वालामुखी विस्फोटों इत्यादि से वायुमण्डल की हवाएँ बनीं और इसके चारों ओर एकत्रित हो गयीं। उनमें जल वाष्प के रूप में भी था। जल बादल बन बरसा और पृथ्वी ठण्डी हो गयी। तब इस पर प्राणी सृष्टि के लिए तापमान बना।

: ४ :

पदार्थ विषयक भारतीय विज्ञान

पदार्थ छः हैं।

पदार्थ उसको कहते हैं जिसके नाम का कुछ अर्थ निकलता हो। संसार तो पदार्थों से भरा पड़ा है, परन्तु ये सब पदार्थ इन छः प्रकार के पदार्थों के अन्तर्गत ही आ जाते हैं। यह इस प्रकार है—

द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष और समवाय पदार्थ के ये छः प्रकार धर्म, अधर्म और विशेष धर्म के आधार पर किये गये हैं।

(१) द्रव्य—द्रव्य वे पदार्थ हैं जिनसे जगत् बना है। ये अनेक हैं।

(२) गुण उन लक्षणों (लिंगों) को कहते हैं जिनसे द्रव्य पहचाना जाता है। इनसे एक द्रव्य का दूसरे द्रव्य से पृथक् होने का बोध होता है।

(३) कर्म है ऊपर जाना, नीचे गिरना, संकुचन, फैलना और स्थान बदलना अर्थात् आगे-पीछे, दायें-बायें चलना।

(४) सामान्य धर्म उस को कहते हैं जिससे द्रव्य के नित्य-अनित्य, कार्य-कारण, दूसरे के साथ समानता अथवा भिन्नता का ज्ञान हो।

(५) विशेष उन धर्मों को कहते हैं जिनसे द्रव्यों के नित्य-अनित्य इत्यादि कर्मों में विशेषता आने का पता चले।

(६) समवाय उन धर्मों को कहते हैं जिनमें द्रव्य, गुण, अथवा कर्म का एक ही प्रयोजन का भास हो।

इनमें मुख्य हैं द्रव्य, गुण और कर्म।

द्रव्यों को नौ श्रेणियों में बाँटा है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिशा, मन और आत्मा।

वास्तव में इनका ज्ञान ही जगत् का ज्ञान है। इनके विषय में ही हम वर्णन करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(१) पृथिवी—सामान्य भाषा में इसका अर्थ है वह गोलाकार ग्रह जिस पर हम बसे हुए हैं। इसे अंग्रेजी भाषा में 'earth' कहते हैं। परन्तु वैज्ञानिक भाषा में पृथिवी से अभिप्राय है सब ठोस पदार्थ (solids)।

जिस पर हम बसे हैं उसका नाम पृथिवी इस करण है कि वह देखने में ठोस है। यथार्थ में इसका एक बहुत बड़ा भाग ठोस नहीं है। ठोस का वैज्ञानिक अर्थ हम पूर्व की कण्डिका में वर्णन कर चुके हैं। अपने अभिप्राय को स्पष्ट करने के लिए हम ठोस पदार्थों को पार्थव पदार्थ कहेंगे।

(२) जल— पृथिवी की भाँति जल भी द्रव्यों की एक श्रेणी है जिनको अंग्रेजी में liquids कहते हैं। ऐसे पदार्थ को हम जल (water) से पृथक् प्रकट करने के लिये जलीय कहेंगे। जल (water) एक जलीय पदार्थ है।

(३) तेज—तेज उन पदार्थों को कहते हैं जिनमें स्वयमेव अथवा सुगमत से शक्ति का आविर्भाव होता रहता है। इन पदार्थों को अग्नेय कहते हैं। इसके अन्तर्गत विघटनात्मक (radio-active) द्रव्य भी आते हैं।

(४) वायु—इससे अभिप्राय उन पदार्थों से है जो सामान्य तापक्रम (temperature) पर वायवी (gaseous) अवस्था में हों।

(५) आकाश—उन द्रव्यों को कहते हैं जो परिमण्डलीय स्वरूप (atomic-form) के नहीं हैं; इस पर भी वे उपज प्रकृति की हैं।

इस विषय में पाश्चात्य ढंग से पढ़े-लिखे लोग भारतीय तथा ग्रीक दर्शनिकों की हँसी उड़ाते रहते हैं। पूर्व में कही द्रव्यों की पाँच श्रेणियों से वे यह समझते हैं कि इनके प्रवक्ता इन्हें तत्त्व मानते हैं। ऐसा नहीं है। वैशेषिक दर्शन शास्त्र का कहने वाला इनको द्रव्य मानता है, तत्त्व नहीं।

तत्त्व तो इस जगत् में तीन हैं। वे द्रव्य भी हैं। वे पदार्थ भी हैं। कारण यह कि वे तत्त्व होते हुए भी द्रव्य और पदार्थों के लक्षणों को रखते हैं।

द्रव्य के लक्षणों में आत्मा भी आता है। आत्म तत्त्व दो प्रकार के हैं। एक जीवात्मा और दूसरा परमात्मा। दोनों तत्त्व हैं और द्रव्य भी हैं। प्रकृति भी द्रव्यों में ही है। अन्तर केवल इतना है कि जहाँ आत्मा-परमात्मा परिणामी नहीं, अर्थात् इनमें परिवर्तन होने से कोई दूसरा द्रव्य नहीं बनता, वहाँ प्रकृति परिणामी है और इनमें से अन्य द्रव्य भी उत्पन्न होते हैं।

पूर्व में कथित पाँच द्रव्यों (पृथिवी, जल, अग्नि, वायु और आकाश) को पंच महाभूत कहते हैं।

काल, दिक् और मन लाक्षणिक द्रव्य हैं। द्रव्य तत्त्व नहीं भी होते। तत्त्व उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदार्थ को कहते हैं, जिसका कारण न हो, जो अनादि हो और विघटित न हो सके।

पाश्चात्य वैज्ञानिक जगत् के प्राकृतिक पदार्थों को १०३ तत्त्वों में विभक्त करते हैं। जैसे हाईड्रोजन, आक्सीजन, कार्बन, लोहा, सोना, रेडियम इत्यादि। वास्तव में वे तत्त्व नहीं हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में इनको तत्त्व माना जाता था। अब तो पाश्चात्य वैज्ञानिकों को इनके तत्त्व न होने का ज्ञान हो चुका है।

वास्तव में भौतिक पदार्थों में ये श्रेणियाँ हैं। प्रत्येक श्रेणी के अपने-अपने पृथक्-पृथक् रासायनिक गुण हैं। इस कारण अब इनको रासायनिक तत्त्व (chemical elements) कहते हैं।

आज के युग में द्रव्यों का उनके रासायनिक गुणों के कारण उद्योग-धन्धों में अत्यधिक प्रयोग होता है। इस कारण द्रव्यों का विभाजन रासायनिक तत्त्वों की श्रेणियों में उपकारी सिद्ध हो रहा है। वैसे एक-एक रासायनिक तत्त्वों की श्रेणी में कितनी प्रकार के अन्य द्रव्य मिले रहते हैं।

उदाहरण के रूप में १०२ रासायनिक तत्त्वों में से ८० तत्त्व ऐसे हैं जो स्वतः विघटित नहीं हो रहे। स्वतः विघटित का अर्थ है कि इन रासायनिक तत्त्वों के परिमण्डल (atoms) टूटकर छोटे द्रव्यमान के परिमण्डल नहीं बन रहे। इस पर भी इन ८० रासायनिक तत्त्वों में २८० से अधिक प्रकार के द्रव्य मिश्रित होते हैं जिनका पता चल चुका है। एक-एक रासायनिक तत्त्व में कई-कई द्रव्य मिले होते हैं।

ऐसा ही एक उदारहण कार्बन है। कार्बन रासायनिक तत्त्व में तीन प्रकार के कार्बन ऐटम तो स्पष्ट ही देखे गये हैं।

एक है सामान्य कार्बन जिसका द्रव्यमान १२ है। इसे C^{12} लिखते हैं। इसके अतिरिक्त इसी में मिला हुआ C^{14} होता है जिसके परिमण्डल का द्रव्यमान १४ है। एक C^{10} भी है। इसके परिमण्डल का द्रव्यमान १० है।

द्रव्यमान का अभिप्राय है एक परिमण्डल (atom) का भार हाइड्रोजन के एक परिमण्डल के भार की तुलना में। इस प्रकार कार्बन में कार्बन जैसे रासायनिक गुण रखने वाले तीन प्रकार के परिमण्डल मिश्रित होते हैं। वे जिनका द्रव्यमान १४ है, वे जिनका द्रव्यमान १२ है और वे जिनका द्रव्यमान १० है। इस पर भी सबके रासायनिक गुण समान हैं।

रासायनिक गुण प्रथम परिधि में इलैक्ट्रोन (तैजस् अहंकारों) की संख्या पर निर्भर करते हैं। इलैक्ट्रोन हैं जो किसी द्रव्य के रासायनिक गुणों का निर्णय करते हैं, परन्तु परिमण्डल का द्रव्यमान (mass) उनमें प्रोटोन (वैकारी अहंकार)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और न्यूट्रोन (भूतादि अहंकार) जो परिमण्डल के केन्द्र में एकत्रित होते हैं, को प्रकट करते हैं।

अतः द्रव्यमान जिसका सम्बन्ध परिमण्डल के केन्द्रीय अहंकरों से है, रासायनिक गुणों से पृथक् बात है।

अतः कभी ऐसा होता है कि परिमण्डल के केन्द्र में किसी कारण से भूतादि अहंकार कणों की संख्या में अन्तर पड़ जाता है। परन्तु तैजस् की कार्य लीन संख्या वही रहती है। इस प्रकार एक रासायनिक तत्त्व में कई-कई द्रव्य मिले रहते हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि द्रव्यत्त्व के विचार से १०२ तत्त्व की श्रेणियाँ ठीक नहीं, रासायनिक क्रियाओं के विचार से भले ही वह ठीक हो।

उदारहण के रूप में नाईट्रोजन (nitrogen) के परिमण्डल का द्रव्यमान १४ है। वायुमण्डल के बाहर को कौस्मिक किरणों (Cosmic rays) के प्रभाव से इसके परिमण्डल के तैजस् अहंकारों की प्रथम परिधि में वृद्धि हो जाती है और परिमण्डल में द्रव्यत्व में परिवर्तन हुए बिना रासायनिक गुणों में एक नवीन पदार्थ बन जाता है।

अतएव द्रव्यों का भारतीय श्रेणीकरण सूक्ष्म, कम सूक्ष्म, स्थूल इत्यादि के विचार से किया गया है। सामान्य व्यवहार में उसका अपना गुण है। रासायनिक विचार से तत्त्व १०२ हैं। दोनों के अर्थ भिन्न-भिन्न हैं। इनके गुण भी अपने-अपने हैं।

आकाशीय, वायवी, अग्नेय, जलीय और पार्थव श्रेणियाँ की गई हैं। यह द्रव्यों के बाहरी रूप (outward appearance) के विचार से है।

इसका यह अर्थ नहीं कि भारतीयों को द्रव्यों के रासायनिक गुणों का ज्ञान ही नहीं था। ज्ञान तो था। सिद्धान्त रूप से वे जानते थे कि धातु-अधातु में क्या अन्तर है। तेज़ाब और क्षार में क्या अन्तर है। धातुओं के मिश्रण (alloys) के विषय में भी वे जानते थे।

इनमें सन्देह नहीं कि वर्तमान युग के टैक्निकल विद्या के जाननेवालों ने इसका प्रयोग विस्तृत रूप में किया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्याय

प्राणी रचना—पाश्चात्य मत

: १ :

जगत् रचना का एक संक्षिप्त-सा वर्णन हमने भारतीय वैज्ञानिकों और पाश्चात्य वैज्ञानिकों की दृष्टि से पूर्व के अध्याय में दिया है। उसमें अधिक वर्णन भारतीय ही है। कारण यह कि पाश्चात्य मत कुछ अधिक विस्तार से है भी नहीं।

भारतीय विद्वान् रचना में प्रकृति से आरम्भ करते हैं। उन्होंने प्रकृति के स्वरूप का वर्णन किया है और बताया है कि उस स्वरूप में परिवर्तन किस प्रकार और क्यों आरम्भ हुए ?

प्रकृति के परमाणुओं से लेकर ठोस पदार्थों के निर्माण की एक कल्पना की गयी है और उसे युक्ति से सिद्ध करने का यत्न किया गया है।

सृष्टि-रचना में आरम्भ परमात्मा के तेज से ही होता है। परमाणुओं के गुणों की साम्यावस्था भंग करने की सामर्थ्य किसी अन्य में सम्भव प्रतीत नहीं होती।

इस पर भी पाश्चात्य मत और भारतीय मत में सैद्धांतिक मतभेद नहीं है। हां, प्राणी-रचना के विषय में मतभेद बहुत अधिक है।

सृष्टि-रचना के समय का कोई लेख अथवा साक्षी नहीं है और जो कुछ भी उस समय के विषय में कहा गया है, वह अनुमान-प्रमाण का परिणाम है। हमने यह बताने का यत्न किया है कि यूरोपीय वैज्ञानिक किस प्रकार किसी वैज्ञानिक खोज की विवेचना में असफल हुए हैं। पाश्चात्य प्राचीन मत तो प्राणी-रचना में परमात्मा का हाथ मानता था। वर्त्तमान पाश्चात्य वैज्ञानिक परमात्मा की सहायता के बिना ही रचना-कार्य को समझाने का यत्न कर रहा है। न तो सृष्टि-रचना के विषय में वह परमात्मा के सहयोग की आवश्यकता समझता है और न ही प्राणी-रचना में।

इस विषय में हम यहां लिख देना चाहते हैं। पहले पाश्चात्य प्राचीन मत लिख दें तो ठीक रहेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिस्र, मैसापटोमिया, सीरिया, फिलिस्तीन, सुमेर, यूनान, हव्श और प्राचीन सब ईसाई जातियों में यह माना जाता रहा है—

Atum, god of the Sun and father of all the other gods, also arose out of the abyss; according to one legend he appeared as a child sitting in a lotus bud. In Heliopolitan theology he was later known as Ra and was said to have given birth to the gods and goddesses and performed his acts as creator on the primeval hill at Heliopolis where his temple was built afterward. In Memphite theology, however, the gods were regarded as manifestations of the uncreated Ptah, who produced them in conjunction with Nun, and who created all other objects in the world form his own thought.

...'In Mesopotomia...therefore, although there was a similar conception af creation from a primeval watery abyss (Apsu)...

In none of the Sumero-Babylonian creation stories were the gods actually creators in a transcedental sense, being themselves an integral part of the universe and a product af its creative process...

Genesis (Bible) gives two accounts of the creation. The story in Genesis (i) and (ii), 1-4 was compiled by the Priestly school in the 5th century B.C...Thus the heaven and the earth were formed out of a primordial ocean, as in the Babylonian myth, but the Hebrew 'tehom' or 'deep' was not personifiedlike Apsu.

(Qtd. from Ency. Brit. Ed. 1967 Vol. 6. p. 709 c, d.)

इसका अर्थ इस प्रकार है—आतम, सूर्य का देवता और देवताओं का पिता भी प्रकट हुआ सागर (अर्णव) से। एक परम्परा के अनुसार वह प्रकट हुआ था एक पद्म पुष्प पर बैठा हुआ एक बालक। हैलियोपोलिटन (एक मज़हब) के अनुसार वह 'रा' नाम से स्मरण किया गया और कहा गया है कि उससे देवी-देवता उत्पन्न हुए और उसने प्राचीन पहाड़ी हैलियोपोलि पर रचना की, जहाँ उसका मन्दिर है।

मैसापटोमिया के मज़हबी (?) लेखों में, देवता स्वयंभू पिता से रचे माने गये हैं। उसने देवताओं को (नन) देवियों के साथ बनाया और जिसने पूर्ण जगत् की रचना की अपने विचार से।

(मैसापटोमियां) में भी ऐसी ही कल्पना है रचना की आदि समुद्र (अर्णव)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
167980
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

से जो आपस् कहा जाता है।

सुमेर बाबल रचना की कहानियों में देवताओं को रचने वाला नहीं जो स्वर्ग से उतरे थे। क्योंकि वे स्वयं ब्रह्माण्ड का एक भाग हैं और रचना कार्य का अंश हैं। उत्पत्ति (बाईबल में) के प्रसंग में रचना के दो वर्णन हैं। उत्पत्ति अध्याय i और ii (१-४) में कुछ पुजारियों के अनुसार ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी में रचना हुई।

इस प्रकार व्योम और पृथ्वी आदि समुद्र में से बनी। बाबल देश की परम्पराओं में भी ऐसा है। परन्तु हैब्रयु, 'तेहम्' अथवा सागर आपस् नहीं कहा गया।

सृष्टि और प्राणी रचना की प्राचीन देशों के साहित्य के अनुसार एक संक्षिप्त झलक यहां दिखायी है।

इसके साथ जो वृत्तान्त भारतीय शास्त्रों से, सृष्टि-रचना का लिख आए हैं और प्राणी रचना का आगे लिखने जा रहे हैं, इसकी तुलना लाभप्रद होगी।

कुछ साँझे शब्द मिलेंगे आपः, रा, समुद्र (अर्णव), पिता का सूर्य देवता, स्वयम्भू, इत्यादि। प्राणी रचना में कमल बालक इत्यादि।

इनके साथ यदि यह भारतीय परम्परा भी मान ली जाए कि प्राणी-सृष्टि एक स्थान पर हुई और वहाँ सृष्टि-रचना के साथ ईश्वरीय ज्ञान भी मनुष्य को मिला तो उक्त प्राचीन जातियों की विवेचना भारतीय ज्ञान-विज्ञान का भ्रंश अंश ही समझ आएगा।

दो बातें विशेष हुई हैं। जिन देशों का ऊपर वर्णन किया गया है वहाँ पहले यहूदियों ने, पीछे ईसाइयों ने और अन्त में मुसलमानों ने राजनीतिक प्रभुता प्राप्त की। तीनों जातियों ने अपनी अज्ञानता के कारण प्राचीन ज्ञान-विज्ञान को बिगाड़ा और विनष्ट किया है।

भारत एक ऐसा अद्वितीय देश हुआ है जहाँ मुसलमान आये भी तो भारत के प्राचीन साहित्य को पूर्णतः विनष्ट नहीं कर सके। यहाँ के ब्राह्मणों ने उसकी रक्षा के लिये अनेक प्रकार से यत्न किया। यहाँ आदि परम्परा अभी भी विद्यमान है और उसका अर्थ समझने-समझाने वाले विद्वान उपस्थित हैं।

यह तो पाश्चात्य इतिहासज्ञ हैं जो घटनाओं को सही रूप में नहीं देखना चाहते। वे जानते हैं कि प्राचीन पूर्वी एशिया के देशों की भ्रान्त और अर्ध विचारित बातों का खण्डन किया जा सकेगा और यदि कहीं उनका स्रोत भारतीय परम्परा मान ली गयी तो भारतीय ज्ञान-विज्ञान का उत्तर देना पड़ेगा जो सुगम नहीं होगा।

भारतीय ज्ञान-विज्ञान अभारतीय सिद्ध करने के लिये यूरोपियन इतिहास लेखक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दो बातें कर रहे हैं। एक तो यह कि वे कहते हैं कि भारतीय उन्नति काल ईसा जन्म से एक-दो शताब्दी पूर्व है। इससे वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि भारतीयों ने जो कुछ सीखा है, वह मध्य पूर्व एशियाई देशों से सीखा है और वह सब मिथ्या है। इस कारण भारतीय ज्ञान-विज्ञान सत्य नहीं हो सकता।

दूसरी बात जो यूरोपियन कर रहे हैं, वह है शास्त्रों के गलत अर्थ लगाना। ब्रिटिश सरकार कई ईसाई मिशनरियों को संस्कृत पढ़ाकर शास्त्रों के अण्ट-शण्ट अर्थ करा रही है।

हमने सृष्टि-रचना की वैज्ञानिक विवेचना ऊपर की है। अब प्राणी-रचना के विषय में लिखेंगे। पहले पाश्चात्य मत ही लिखेंगे।

प्राणी-रचना के विषय में भी शुद्ध भौतिकवादी मत का आश्रय लेने वाले पाश्चात्य वैज्ञानिक सृष्टि-रचना के विषय में यह नहीं बता सके कि रचना आरम्भ कैसे हुई? 'मैटर' का कोई भी अंश स्वतः हरकत में नहीं आ सकता। यह उनका अपना सिद्धान्त है। तो फिर रचना आरम्भ कैसे हुई? यह बिना किसी चेतन (animate) साधन के सम्भव नहीं हो सकती।

इसी प्रकार ये प्राणी रचना के विषय में भी कुछ भी सिद्ध करने में सफल नहीं हो सके। इसमें भी चेतन तत्त्व को स्वीकार किये बिना रचना की कल्पना युक्तियुक्त नहीं बन पायी।

जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति के आरम्भ के विषय में दो वैज्ञानिक हालडेन (Haldane) और ओपेरिया (Oparia) का मत 'ऐनसाइक्लोपीडिया आफ़ ब्रिटेनिका' में इस प्रकार लिखा है—

The elements of life—hydrogen, carbon, nitrogen and oxygen—happen to be the commonest in the solar system. How did they apper on the surface of a primitive earth, say, 4,00,00, 00,000 years ago?...

(Ency. Brit. Vol. 13 p. 1085 e.)

यह प्रश्न था जिसका उत्तर वैज्ञानिक अभी तक ढूंढने में सफल नहीं हुए। प्रश्न है कि हाईड्रोजन, कार्बन नाईट्रोजन और ऑक्सीजन सूर्य मण्डल में प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं, तो ४,००,००,००,००० वर्ष आज से पूर्व ये कैसे पृथ्वी पर आये?

इस प्रश्न पर एक बात ने नवीन रूप में विचार करने में प्रोत्साहन दिया।

सर एफ. जी. हापकिन्स ने एक नयी विज्ञान की शाखा की नींव डाली। इसका नाम शरीर-रसायन (bio-chemsitry) रखा गया। इसके कुछ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविष्कारों से उत्साहित हो ए. आई. ओपरिन और जे. बी. एस. हालडेन ने नयी कल्पना आरम्भ की।

ओपरिन ने विचार किया—

Oparin thought the original atmosphere was mephetic, consisting of methane and ammonia. Some geo-chemists have criticised this view, but it is not essential to Oparin's hypothesis : all that is required is enough carbon and nitrogen cempounds in or on the surface of the primitive oceans. The hydro-carbons drawn from the earth's body itself were present is farely likely, since it has been found that carbonaceous meteorites contain just such material. One may, therefore, imagine a primitive earth with an atmosphers, possibly of nitrogen, in which there is a kind of thin oily film on the surface of the oceans that can be thrown up on the shores. The first stage in the building of life probably consisted of the reactions of these carbonanceous and nitrogenous moleclues, with the formation of more complex molecules. These reactions—the beginning of what appears in life as enyzme reactions—were probably brought about by the presence of other elements, such as sulphur phosphorus and iron.

Ibid. P. 1085

इसका अर्थ है—

ओपरिन का विचार था कि पहला वायु मण्डल 'मेफ़ेटिक' था। अर्थात् मीथेन और अमोनिया (CH_3, NH_4) का था। कुछ भूगर्भ शास्त्र के रासायनवेत्ता इस विचार को ठीक नहीं मानते। परन्तु (ऐनसाईक्लोपीडिया का लेखक कहता है) कि ओपरिन की कल्पना के लिये यह आवश्यक नहीं है। जो बात आवश्यक है वह कार्बन और नाईट्रोजन संयुक्त पदार्थों का प्रचुर मात्रा में होना है। इनको प्राचीन समुद्रों की सतह पर होना चाहिये। हाईड्रोजन और कार्बन पृथ्वी पर पर्याप्य मात्रा में उपस्थित थे। यह सिद्ध होता है कि ऐसा बड़ी मात्रा में था; क्योंकि यह देखा गया है कि उल्कापिण्डों में कार्बन से बने पदार्थ मिलते हैं। इस कारण यह कल्पना की जा सकती है कि आदि पृथ्वी में जिसका वायुमण्डल नाईट्रोजन का था, एक पतली-सी तेल की-सी परत समुद्रों की सतह पर थी जो हवा से किनारे पर फेंकी जाती थी। जीवन-निर्माण का प्रथम चरण कदाचित् कार्बन रखनेवाले और नाईट्रोजन रखनेवाले अणुओं के परस्पर क्रिया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आना था जिससे अधिक जटिल अणु बने। ये क्रियायें जीवन का आरम्भ था। यह देखा जाता है (enzyme) की प्रतिक्रियाओं में। यह सम्भव हुआ था गन्धक, फ़ासफ़ोरस इत्यादि दूसरे अणुओं की उपस्थिति के कारण।

इस पूर्ण निराधार कल्पना में लेखक को भी एक कमी प्रतीत हुई और वह आगे लिखता है—

The next question is : How was the energy to drive these chemical transformations derived ? At the present time energy comes from the constant turnover of a very small fraction of the amount of solar radiation hitting the earth.

Ibid.

अर्थात्—अगला प्रश्न है कि इन रासायनिक क्रियाओं को सम्पन्न करने के लिये शक्ति कहाँ से आयी ? आजकल तो ऐसे कामों के लिये 'शक्ति' सूर्य से आती है जिसमें से निरन्तर निकलने वाली शक्ति का एक अति लघु अंश पृथ्वी पर पड़ता है।

इस वक्तव्य में हूरों और परियों के बच्चों के से स्वप्न लिये गए हैं। यह पूर्ण वक्तव्य आधाररहित है।

अब तो वैज्ञानिकों ने इस शरीर-रसायन (bio-chemistry) में खोज करते-करते बहुत प्रगति की है, परन्तु अभी भी वे रासायनिक पदार्थों से जीवन निर्माण नहीं कर सके।

इस दिशा में नवीनतम खोज डाक्टर खुराना और उनके साथियों की है। इन्होंने यह पता किया है कि प्राणी शरीर में जीवित कोषिकायें (living cells) इनमें केन्द्रिका (nucleus), केन्द्रिका में धागों की भाँति के क्रोमोज़ोम्स (chromosomes), इनकी संख्या भिन्न-भिन्न प्राणियों की कोषिका में भिन्न-भिन्न; प्रत्येक क्रोमोज़ोम्स में कई-कई सौ गोल-गोल फलों की भाँति लगे जीन (gene), और ये जीन दो प्रकार के रासायनिक पदार्थों के अणुओं से बने होते हैं। ये रासायनिक पदार्थ R. N. A. तथा D. N. A. नाम से लिखे जाते हैं।

यहाँ तक पहुँच जाने पर भी जीव निर्माण नहीं हो सका। अधिक-से-अधिक यह कल्पना की गयी है कि जीन की संख्या में परिवर्त्तन करने से मनुष्य के व्यवहार और आकृत्ति में अन्तर उत्पन्न किया जा सकेगा।

परन्तु भिन्न-भिन्न प्राणियों में जीन की संख्या भिन्न-भिन्न है। मनुष्य की एक कोषिका की केन्द्रिका में कई लाख जीन होते हैं।

इस दिशा में खोज करनेवाले का कहना है कि उन्होंने एक वायरस (अति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्षुद्र जीव) को लिया है। यह एक कोषिका (unicellular) जीव था। इसकी केन्द्रिका में ७४ जीन थे। उनमें इन्होंने कुछ जीन एक अन्य जीव (yeast) के लेकर डाल दिये। इससे एक अन्य कोषिका, जिसमें जीन की संख्या १७० हो गयी, बन गयी है।

इस प्रकार ये वैज्ञानिक यह आशा कर रहे हैं कि वे एक नवीन प्राणी का सृजन कर सके हैं।

यद्यपि जीन की खोज और निर्माण से भविष्य में क्या किया जा सकेगा, कहा नहीं जा सकता, जो बात अभी तक की गयी है, वह नवीन प्राणी की रचना नहीं। वह कुछ ऐसा है जैसे कि एक पेड़ की डाल के साथ किसी दूसरे पेड़ की डाल की प्योंद लगा दी जाती है अथवा किसी गाय की पाँचवीं टाँग किसी बछड़े की टाँग काटकर लगाकर बना दी जाती है।

कभी एक मनुष्य का माँस काटकर दूसरे का घाव भरने के लिये उसे वहाँ जोड़ दिया जाता है।

इस प्रकार की प्योंद बहुत पुराने जमाने से लगायी जा रही है। आम के पेड़ पर कलमी आम की डाल अथवा नींबू की डाल सन्तरे के पेड़ से लगायी जाती है। इस कार्य में कला-कौशलता तो है।

यह भी ठीक है कि जीन का निर्माण रासायनिक पदार्थों से किया जा सकता है, परन्तु इससे नया प्राणी बन गया, कहना कठिन है। नये प्राणी की सृष्टि तब मानी जायेगी जब वह अपने जैसी सन्तान बना सकेगा।

गधे और घोड़े से एक नये जीव खच्चर का सृजन किया गया है, परन्तु खच्चर अपनी सन्तान नहीं बना सकता। यह कहा जाता है कि भेड़िया और कुत्ते के समागम से एक नयी श्रेणी का कुत्ता अथवा भेड़िया बन जाता है, परन्तु वह अपनी सन्तति नहीं चला सकता।

परन्तु सबसे बड़ी बात यह है कि जो कुछ एक वैज्ञानिक अपनी लैबोरेटरी में आज कृत्रिम पर्यवेक्षण में कर रहा है, क्या यह आदि सृष्टि में प्रकृति ने भी किया था? इसका क्या प्रमाण है? वह कृत्रिम वातावरण आदि सष्टि में था क्या?

यह सब ख़याली पुलाव (speculation) हैं।

हम कल्पना (speculation) को मिथ्या प्रयास नहीं समझते। परन्तु प्रत्येक कल्पना को प्रमाण मानने के लिये उसे अनुमान प्रमाण की पद्धति के नियमों से ही स्वीकार किया जा सकता है।

यदि पृथ्वी के तापमान पर और वायुमण्डल में जीन की प्योंद (grafting) किसी छोटे से छोटे जन्तु में भी स्वतः हो सकी होती तो माना जा सकता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि बड़े जन्तुओं में भी ऐसा हो सका होगा।

शरीर, मन, इन्द्रियां और जीवात्मा के संयोग को प्राणी कहते हैं।

चरक कहता है—

शरीरेन्द्रियसत्वात्मसंयोगो धारि जीवितम्।

(चरक संहिता १-४२)

अर्थात्—प्राणी (life) में शरीर, इन्द्रियां, मन और जीवात्मा का संयोग होता है।

शरीर तो रासायनिक पदार्थों का संग्रह है। वे रासायनिक पदार्थ वनस्पतियों में बनते हैं। जो रासायनिक पदार्थ शरीर-निर्माण में काम करते हैं, वे बिना वनस्पतियों, विशेष रूप में पर्णहरित (chlorohpyll) की सहायता के बन नहीं सकते।

कार्बन हाईड्रोजन और ऑक्सीजन को सदियों तक इकट्ठा रखने पर भी कार्बोहाईड्रेट नहीं बनते। इनको निर्माण करने की क्षमता पर्णहरित (chlorpohyll) के सहयोग के बिना नहीं हो सकती।

पर्णहरित अभी तक नकली नहीं बन सका। न ही यह सिद्ध किया जा सका है कि इनका कार्य किस प्रकार बिना इनकी सहायता के हो सकता है।

इसी प्रकार अमोनिया और यूरिया इत्यादि नाईट्रोजन के संयुक्त पदार्थ (Compounds) तो फैक्टरी में बन सकते हैं, परन्तु प्रोटीन जो जन्तु के शरीर में होती है, वह बिना वनस्पतियों अथवा अन्य प्राणी की सहायता के बन नहीं सकती।

अतः शरीर निर्माण के लिये आवश्यक कार्बोहाईड्रेट (carbohydrates) और उच्च अमीनो एसिड्स बिना किसी अन्य प्राणी की सहायता के नहीं बन सकते। अभिप्राय यह कि आज की कलात्मक (technological) प्रगति के होने पर भी हम इनका निर्माण बिना वनस्पतियों की सहायता के नहीं कर सकते। आदि सृष्टि में ये कैसे बने होंगे? R. N. A तथा D. N. A. कैसे बन गये होंगे? इसका कैसे अनुमान लगाया जा सकता है?

जहां तक इन्द्रियों का सम्बन्ध है, हम (भारतीय वैज्ञानिक) इसका निर्माण मानते हैं तैजस् अहंकार और वैकारी अहंकार के संयोग से।

वर्तमान युग के वैज्ञानिकों ने कृत्रिम ढंग से इन अहंकारों के निर्माण का यत्न किया है। तैजस् अहंकार (electrons) और वैकारी अहंकार (Protons), ऐटम (परिमण्डल) को खण्डित कर उसमें से प्राप्त करते हैं। इससे वैज्ञानिक कृत्रिम शरीर (Computers) बनाने में अधिक सफल हुए हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रियों में प्रयोग होने वाली ऊर्जा उन यन्त्रों में प्रयोग की जाती है जिनको इलैक्ट्रोनिक्स कहते हैं।

परन्तु यह उर्जा विघटित हो रहे परिमण्डलों से प्राप्त की जाती है। इस पर भी वैज्ञानिक वह ऊर्जा निर्माण नहीं कर सके। वह उर्जा परिमण्ल (ऐटम) में से निकलती है। वैज्ञानिकों की कारीगरी यह है कि ये उसे नियन्त्रण में ला सके हैं।

इन यन्त्रों में इलेक्ट्रोन्स और प्रोटोन्स के बहाव को क्रमबद्ध करने से वैज्ञानिक कम्प्यूटर (Computer) बना रहे हैं, जो आँख, कान और स्पर्श इन्द्रियों का काम करते हैं। ये मन और बुद्धि का भी काम करते हैं। ये कम्प्यूटर मानव इन्द्रियों, मन और बुद्धि से अधिक गति तथा कम भूलों से काम करते हैं।

परन्तु कम्प्यूटरों का निर्माण यह सिद्ध नहीं कर रहा कि प्राणी के मन, बुद्धि और इन्द्रियों में काम करने वाली शक्ति का निर्भाण हो गया है। शक्ति तो प्रकृति में उपस्थित है। भारतीय वैज्ञानिकों के विचार से परमात्मा के प्राण ही उसमें होते हैं। इस पर भी इतना तो निश्चय है कि उर्जा निर्माण नहीं हो रही।

यह ठीक है कि उनका प्रयोग कुशलता से हो रहा है। परन्तु जो तीसरी वस्तु प्राणी में है और जो सबसे अधिक आवश्यक है, वह है जीवात्मा। उसका न तो निर्माण हो सका है और न ही उस पर नियन्त्रण हो सका है।

जीवात्मा का मुख्य लक्षण है ईक्षण करना। ईक्षण के अर्थ हैं कार्य के आरम्भ, चालू और अन्त करने की सामर्थ्य। यह कम्प्यूटर नहीं कर सकता।

कम्प्यूटर कब कार्य आरम्भ करे, कब तक कार्य करता रहे और कब कार्य समाप्त कर दे, यह तो कम्प्यूटर चलाने वाला ही निश्चय करता है। कम्प्यूटर स्वयं नहीं कर सकता। अतः कम्प्युटर प्राणी के सबसे आवश्यक अंग जीवात्मा का कार्य नहीं कर सकता।

यह तो माना जा सकता है कि आदि सृष्टि में परिमण्डलीय शक्ति के आश्रय ही मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ बनी हैं। परन्तु इस शक्ति पर नियन्त्रण जीवात्मा का होता है। अतः कम्प्यूटर गिनती-मिनती के कार्य बहुत शीघ्रता से करता है परन्तु वह प्राणी नहीं। प्राणी में discretion, decision and direction देने की सामर्थ्य होती है। यह कम्प्यूटर में नहीं है।

अतः प्राणी का निर्माण शरीर बनाना हीं नहीं, एक कम्प्यूटर बनाना भी नहीं, वरन् उसमें चेतन शक्ति को, जो कार्य को आरम्भ और उसकाअन्त भी कर सके, लाकर उसमें बिठाना भी है।

प्राणी कार्बोहाईड्रेटस (Carbohydrates) अथवा प्रोटीन्स (proteins)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही नहीं है। अतः प्राणी के इस पृथ्वी पर उत्पन्न होने में देखने की बात यह नहीं कि ये रासायनिक पदार्थ कैसे बन सकते हैं? इनके रहते भी प्राणी नहीं बन सकता और न बना रह सकता है।

वैज्ञानिक यही कर रहे हैं कि इन दो प्रकार के पदार्थों को एकत्रित कर लें। वे समझते हैं कि इनके निर्माण कर लेने पर वे प्राणी निर्माण कर सकेंगे।

प्रथम तो प्राणी कार्बोहाईड्रेट्स और अमीनो एसिड नहीं। अतः इसका आदि पृथ्वी पर निर्माण का वर्णन भी कर लिया जाय तो भी प्राणी का निर्माण नहीं हो सकता।

परन्तु पाश्चात्य वैज्ञानिक बिना प्राणी की सहायता के इन पदार्थों का निर्माण भी कर नहीं सके।

प्राणी की रचना के लिए वनस्पतियों का भूतल पर उत्पन्न होना प्रथम चरण है।

सूर्य की शक्ति का पृथ्वी पर पड़ना दूसरा चरण है। जब तक इनके पृथ्वी पर उत्पन होने का वर्णन नहीं किया जा सकता तब तक प्राणी का उत्पन्न होना बताया नहीं जा सकता।

यूरोपियन वैज्ञानिकों का यह भी कहना है कि जब अमीनो एसिड पृथ्वी पर बनी तो उस समय वायुमण्डल में ऑक्सीजन नहीं थी। तब वह ऑक्सीजन कैसे आयी और वायुमण्डल की हाईड्रोजन इत्यादि कहां गयी और क्या वह अब भी विलीन हो रही है? ये प्रश्न हैं।

जीवन चाहे तो वह वनस्पतियों के प्रकार का हो चाहे प्राणी के प्रकार का, दोनों में ऑक्सीजन का होना आवश्यक है। बिना ऑक्सीजन के शरीर-निर्माण के पदार्थ बन नहीं सकते। वे कैसे बने, बताया नहीं गया।

यदि यह कहा जाये कि चाँद और तारों पर भ्रमण करने वाले अभी पृथ्वी पर के पदार्थों को भी समझ नहीं सके तो गलत नहीं होगा। वे अंधेरे में टटोल रहे (groping in the dark) हैं।

: २ :

भारतीय मत से प्राणी सृष्टि

हम यह बता चुके हैं कि कुछ घटनाएँ ऐसी होती हैं, जिनके विषय में प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिल सकता। उनके लिए अन्य दो प्रमाणों का आश्रय लेना पड़ता है।

प्रथम प्राणी की रचना कैसे हुई? यह रचना के लाखों वर्ष उपरान्त उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होने वाला मनुष्य प्रत्यक्ष प्रमाण से सिद्ध नहीं कर सकता। इसका ज्ञान प्राप्त करने के लिये अनुमान प्रमाण का आश्रय लेना होगा। भारतीय शास्त्र शब्द प्रमाण का भी आश्रय लेते हैं। शब्द प्रमाण का अर्थ है वेद प्रमाण। परन्तु आज के वैज्ञानिक और नास्तिक दार्शनिक वेद को प्रमाण नहीं मानेंगे।

अतः उनके लिये केवल अनुमान-प्रमाण ही रह जाता है। अनुमान-प्रमाण भी उतना ही मान्य है जितना कि प्रत्यक्ष। शर्त यह है कि अनुमान-प्रमाण प्रतिष्ठित हो।

अनुमान-प्रमाण का आधार किसी प्रत्यक्ष देखे पर स्थिर होता है। पहले प्रत्यक्ष में किन्हीं दो वस्तुओं अथवा घटनाओं का सम्बन्ध देख निश्चय कर लिया जाता है। जैसे अग्नि और धुएँ का सम्बन्ध है। वस्तुओं का बनना और टूटना है। जन्म और मृत्यु का सम्बन्ध भी ऐसा ही है। ये सम्बन्ध अटल हैं।

अतः जब कभी हम एक को देखते हैं तो दूसरे का होना निश्चित हो जाता है। धूआँ देखें तो अग्नि का होना मानना पड़ता है अथवा जब किसी को मरता देखते हैं तो उसकी उत्पत्ति को स्वीकार करना होता है। मरने वाले का जन्म होना ऐसे ही स्वीकार किया जाता है, जैसे कि प्रत्यक्ष देखे का है। इसी प्रकार कोई बनी वस्तु देखें तो उसके बनने के विषय में ऐसे ही कहा जा सकता है जैसे कि किसी प्रत्यक्ष में बनी वस्तु के विषय में कहा जा सकता है।

अतः भारतीय वैज्ञानिक प्रथम प्राणी की उत्पत्ति का अनुमान इसी प्रकार लगाते हैं। उनका अनुमान आज के प्रत्यक्ष के आधार पर किया गया है। अतः वह अनुमान उतना ही सिद्ध है जितना कि कोई भी प्रत्यक्ष में देखी घटना।

आइये देखें कि आजकल प्राणी कैसे उत्पन्न होता है? बिना पुरुष के वीर्य-कण (spermatazoon) और स्त्री अण्ड (ovum) के संयोग से प्राणी का निर्माण नहीं होता। सब जीवधारी ऐसे ही बनते हैं। वनस्पतियों में तथा जन्तुओं में।

इस पूर्ण प्रक्रिया के लिये कि प्राणी कहाँ से उत्पन्न होता है, निम्न बातें उल्लेखनीय हैं।

(१) यह कहा जाता है कि वीर्य और रज जिनमें पुरुष कण और स्त्री अण्ड बनते हैं, अन्न से उत्पन्न होता है। अन्न पंच भौतिक है। अतएव प्राणी के बनने के लिये पंच महाभूतों का पृथ्वी-तल पर उपस्थित होना प्रथम आवश्यकता है।

(२) अन्न से शरीर बनता है और शरीर कार्य करता है। अन्न में तेज (energy) भी होता है। इस तेज से शरीर की इन्द्रियाँ कार्य करती हैं। अतः अन्न को शरीर में परिवर्तन करने वाजी शक्ति का निर्माण होना चाहिये।

खाया हुआ अन्न रक्त, मांस, मज्जा इत्यादि में परिवर्तित होता है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तन से वीर्य और रज बनते हैं। यह कौन बनाता है और कैसे बनाता है?

वैज्ञानिक कहते हैं कि रासायनिक शक्ति (chemical energy) शरीर में कार्य करती है। परन्तु इन सबका शरीर से बाहर निर्माण नहीं किया जा सकता। किसी भी प्रयोगशाला में अन्न को रक्त, माँस मज्जा इत्यादि में परिवर्तित नहीं किया जा सकता। न ही उससे रज और वीर्य का निर्माण किया गया है। वीर्य कण (sperm) और अण्ड (ovum) बिना जीवित शरीर के नहीं बनाया जा सकता।

शरीर में ही अन्न से तेज निकल सकता है। यह अन्न में उपस्थित होता है, परन्तु उस तेज से अन्न बदलकर रक्त, माँस, मज्जा तो शरीर के भीतरी अंगों से ही बन सकते हैं।

अन्न की उर्जा (तेज) जब शरीर में जाकर कार्य करने लगती है तो प्राण कहलाता है। अन्न में शक्ति सूर्य रश्मियों से आती है। यही शरीर में प्राण का रूप हो जाती है। अतः सूर्य के तेज को प्राण का रूप देना अत्यावश्यक है। प्राणी-सृष्टि के लिये यह दूसरी आवश्यकता है।

प्राणी में यह क्रिया माता-पिता के शरीर से आरम्भ होती है। माता अण्डा बनाती है और पिता वीर्य कण बनाता है।

(३) वीर्य और अण्डा प्राणी के निर्माण में भाग लेते हैं, परन्तु उनमें भी वीर्य-कण (sperm) और अण्डा (ovum) होने आवश्यक हैं। यह माता-पिता के जीवित कोषाणुओं के बिना नहीं आ सकते।

हमारा विचार है कि जब रासायनिक पदार्थों से जीन बन जायेंगे तब भी जीन से जीन बनें, यह बिना प्राणी की सहायता के सम्भव नहीं हो सकेगा। बिना माता-पिता की उपस्थिति के नया प्राणी बन नहीं सकेगा।

वर्तमान स्थिति यह है कि बिना जीवधारी माता-पिता की उपस्थिति के नया जीव नहीं बनता।

अतः प्राणी-निर्माण के लिये अन्न, उर्जा और वीर्य तथा रज कण आवश्यक हैं। इनमें से एक भी पदार्थ जड़-प्रकृति से, बिना चेतन की सहायता के बन नहीं सकता।

(४) जब प्राणी बन जाये तो उसे जीवित रख सकना चौथी आवश्यकता है। जीवित रखने के लिये शरीर को ऑक्सीजन और जल की आवश्यकता रहती है।

ये पूर्व आवश्यकताएँ हैं जिनसे प्राणी का उद्भव और पालन होता है। भारतीय वैज्ञानिक यह मानते हैं कि जीवित शरीर ही उक्त सब-कुछ का निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करने और उसका पालन करने के लिये चाहियें। परन्तु इन सबके अतिरिक्त एक अन्य द्रव्य है। जब तक वह शरीर में आकर विराजमान नहीं होता, शरीर प्राणी-नहीं बन सकता। वह द्रव्य है जीवात्मा। इसके बिना प्राणी का शरीर कार्य नहीं कर सकता।

जीवात्मा प्राणी के शरीर में है अथवा नहीं और यह शरीर से कोई पृथक् द्रव्य है, इसके विषय में हम एक पृथक् अध्याय में लिखेंगे। यहाँ इसका संकेत मात्र कर दिया है।

यहां तो हमने यह बताया है कि शरीर का रक्त, माँस, मज्जा इत्यादि पदार्थ बिना किसी पूर्व प्राणी की सहायता के बनते नहीं देखे जाते। इनके स्रोत कार्बोहाड्रेट्स (carbohydrates) और प्रोटीन (protein) भी किसी प्राणी के सहयोग के बिना नहीं बन सके।

अतः सृष्टि के आदि में भी बिना किसी प्राणी की सहायता के ये बने नहीं। यही भारतीय अनुमान का परिणाम है।

ऐसा कहा जाता है कि जिस समय मुर्गी का अण्डा संसचित (fertallized) होता है, तबसे अण्डे में से बच्चा होने तक, अण्डे की अनेक प्रकार के यन्त्रों से देख-रेख करने पर भी, कोई वस्तु बाहर से भीतर जाती देखी नहीं गयी। इससे वैज्ञानिक इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि जीव भीतर ही प्रकट होता है। कोई जीवात्मा बाहर से नहीं आता। परन्तु भारतीय वैज्ञानिकों का मत है कि जीवात्मा अव्यक्त होने के कारण यन्त्रों की देख-रेख का विषय नहीं। जब उसके रहने का मकान (शरीर) बन जाता है, तब जीवात्मा उसमें आकर टिक जाता है।

ऐसा माना जाता है—

शरीरं यदवाप्नोति यच्चाप्युत्क्रामतीश्वरः।
गृहीत्वैतानि संयाति वायुर्गन्धानिवाशयात्॥

(भ० गी० १५-८)

अर्थात्—गृह का स्वामी (जीवात्मा) पहला शरीर छोड़कर नये शरीर में ऐसे चला जाता है जैसे कि वायु के साथ बहकर गंध एक मकान से दूसरे मकान में चली जाती है।

जीवात्मा अव्यक्त होने से यन्त्रों से नहीं देखा जा सका तो विस्मय करने की बात नहीं। विस्मय तो तब होता जब देखा जाता। एक प्राणी एक क्षण में मर जाता है। मरने के समय एक क्षण में उसके शरीर में उपस्थित सब रासायनिक पदार्थ ज्यों के त्यों बने रहते हैं। इस पर भी जीवन नहीं रहता। इस निकल जानेवाले द्रव्य को जीवात्मा कहते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसेचन (fertallization) के उपरान्त जब शरीर बनने लगता है तब जीवात्मा इसमें आता है। इसका संसेचन के साथ सम्बन्ध नहीं। संसेचन का सम्बन्ध शरीर से है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक अपनी इस जन्म-मरण की घटना को प्रयोगशाला में निर्माण करने की असफलता के कई कारण बताते हैं।

भारतीय विज्ञान इस घटना (fertallization) को देखता है और अनुमान प्रमाण से इसकी विवेचना करता है।

यह घटना देखकर सृष्टि के आदि में भी कुछ ऐसा होने का अनुमान लगाया जा सकता है।

(१) सबले पहले पृथिवी तल पर वनस्पतियाँ बनीं। वनस्पतियाँ भी तो प्राणी शास्त्र का विषय ही हैं। इनकी उत्पत्ति भी उसी प्रकार पुरुष कण और स्त्री कण (इनकी अवस्था में इनको पराग (pollen) और अण्ड (ovum) कहते हैं।) के संयोग से होती हैं।

अतः ये कहाँ से आयीं? भारतीय वैज्ञानिकों का यह अनुमान है कि पृथिवी पर जीवन किसी अन्य ग्रह से आया है। इस विषय में यह कहा जाता है कि जीवात्मा के रहने योग्य शरीर वनस्पति के बीज के रूप में किसी अन्य ग्रह से आया है।

इस विषय में भारतीय वैज्ञानिक यह कहते हैं—

ऋक्षा ह वा इयमग्र आसीत्। तस्यां देवा रोहिण्यां वीरुधोऽरोहयन्।

(मै० स० १-६-६२

(भगवद्दत्त—वेद-विद्या-निदर्शन, पृष्ठ ११०)

अर्थात्—पहले यह (पृथिवी) निश्चय से लोमरहित थी। उसमें देवों ने रोहिणी से वीरुद (वनस्पतियों) को लगाया।

ये वनस्पतियाँ कैसे पृथिवी पर आयीं?

बीजमात्रं पुरा सृष्टम्॥ (महा भा० १२-१८४-१५)

(पं० भगवद्दत्त द्वारा वेद-विद्या-निदर्शन में पृष्ठ ११२ पर उद्धृत)

भारतीय वैज्ञानिकों का विचार है कि पृथिवी पर अन्य नक्षत्रों से बीजों के रूप में वनस्पतियाँ आयीं।

इस पर भी वनस्पतियों के लिये यहाँ भूमि और वायुमण्डल तथा जल तो पहले बन गया था।

अन्य भारतीय शास्त्रों में भी यही बात लिखी मिलती है! उदाहरण के रूप में जैमिनीय ब्राह्मण में इस प्रकार लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोमं वे राजानं यत् सुपर्ण आहरत् समभिनत् तस्य वा विप्रषो अपतंस्ता एवेमा औषधयोऽभवन्। सर्वा उ ह वै सौम्याः औषधयाः॥ (जै० ब्रा० १-३५५)

(पं० भगवद्दत्त द्वारा वेद-विद्या-निदर्शन, पृष्ठ १११ पर उद्धृत)

अर्थात्—निश्चय से सोम राजा का सुपर्ण से जो अहरण किया था, भेदन किया था, उसके जो छींटे गिरे वह ही औषधियाँ हुईं। सब ही औषधियाँ निश्चय से सौम्य हैं।

सुपर्ण का अभिप्राय मैत्रीय संहिता में बताया है। वहां लिखा है कि बीज उड़कर पृथिवी पर आये।

इस प्रकार वनस्पतियाँ पृथिवी पर हुईं। वनस्पतियों के हो जाने के उपरान्त प्राणी-सृष्टि हुई।

प्राणी-सृष्टि में भी वही कुछ हुआ जो आज हो रहा है। किसी प्रकार की विशेष प्रक्रिया की उस समय आवश्यकता रही होगी, इसका कोई प्रमाण नहीं। हमें तो उस समय किसी विशेषता की आवश्यकता अनुभव नहीं होती; जैसा कि आजकल होता है, वैसा ही तब (आदि सृष्टि काल में) भी हुआ प्रतीत होता है।

पूर्व इसके कि हम प्राणी सृष्टि के विषय में पाश्चात्य और भारतीय विज्ञान की तुलना करें, हम पूर्व भारतीय कथन में रोहिणी और सोम के विषय में अपने विचार लिख देना ठीक समझते हैं।

रोहिणी एक नक्षत्र है। वह अन्तरिक्ष में भ्रमण करता हुआ कभी पृथिवी के समीप आया प्रतीत होता है। रोहिणी नक्षत्र से सोम ने बीजों का अपहरण किया और पृथिवी पर छिड़क दिया। उस समय पृथिवी पर जलवायु और भूमि की स्थिति ऐसी अवश्य हो चुकी होगी, जिसमें बीज जम सके होंगे।

सोम किसी प्रकार का दैवी पदार्थ है जो अन्तरिक्ष में भ्रमण करता है। इसके विषय में हम ठीक-ठीक तो नहीं लिख सकते; परन्तु एक नवीन खोज का समाचार यहाँ लिख देना चाहते हैं।

अभी-अभी अन्तरिक्ष में एक नवीन अवलोकन किया गया है। इसका समाचार दिल्ली के दैनिक 'मदरलैण्ड' में इस प्रकार प्रकाशित हुआ है—

Life existed outside earth according to a team of Australian scientists, reports U.N.I. quoting D.P.A.

In a discovery first published yesterday, the scientists reported finding on Sunday a 3,000 million miles wide cloud of the molecules of form aldemine in space 300 years (light distance) away. Their discovery followed determination of form aldemine

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

spectroscopic call sign at Monash University in Melbourne last week.

The call sign was rushed to the Parkes Radio telescope north west of Sydney, where scientists found it to match signals of the cloud.

Professor Ronald Brown, one of the four scientists involved in the discovery, said, "Formaldemine existed only fleetingly on earth, but had been produced in laboratories in the past six months. The team discovered form-aldehide, related molecule into space last September and acid aldehide in December.

They said they were the building bricks of the amino acids and protein molecules found in living matter.

Professor Brown said the discoveries make it much more probable that life could have started by clouds of gas condensing into palnets.

Qtd. from 'Motherland' Delhi,
Friday June, 2. 1972.

इसका अर्थ है—

आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिकों की एक मण्डली के कथनानुसार जीवन पृथिवी के अतिरिक्त भी उपस्थित है। ऐसा U. N. I. ने D. P. A. के हवाले से कहा है।

एक खोज पहले ही, कल प्रकाशित हुई है। रविवर को ३, ००० मिलियन (३,००,००,००,०००) मील लम्बा-चौड़ा 'फार्म-ऐल्डिराइन' अणुओं का एक बादल ३०० प्रकाश वर्ष की दूरी पर पाया गया है। (प्रकाश १,८६,००० मील प्रति सैकिण्ड चलता है। अतः एक प्रकाश वर्ष का अर्थ है १,८६,००० × ६० × ६० × २४ × ३६५ मील। ऐसे ३०० गुणा मील अन्तर पर)।

यह पता चला जब मोनाश विश्वविद्यालय मैलबोर्न में स्पैक्ट्रो-स्कोप पर पिछले सप्ताह चिह्न देखे गये।

इन चिह्नों की सूचना पार्क्स की रेडियो टैलिस्कोप, जो सिडनी के उत्तर पश्चिम में लगी हुई है, पर भेजी गयी। वहाँ वैज्ञानिकों ने इस बादल के लक्षण देखे।

प्रोफ़ेसर रोनल्ड ब्राऊन, जो चार वैज्ञानिकों में से एक हैं, जिन्होंने यह खोज की है, ने कहा है कि पृथिवी पर फ़ार्म ऐल्डिमाईन बहुत कम दिखायी देती है, परन्तु अब पिछले छः मास से प्रयोगशालाओं में बनाई जा रही है।

वैज्ञानिकों की इसी मण्डली द्वारा फ़ार्म-ऐल्डिहाईड, जो फ़ार्म ऐल्डिमाईन से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलता-जुलता अणु है, पिछले सितम्बर के महीने में और ऐसिड-ऐल्डिहाईड दिसम्बर के महीने में अन्तरिक्ष में देखा गया था।

मिस्टर ब्राऊन का कहना है कि ये अमीनो ऐसिड्स प्रोटीन के निर्माण में ईंटें हैं और ये पदार्थ जीवित शरीर में पाये जाते हैं।

मिस्टर ब्राऊन का यह भी कहना है कि इस खोज से यह अधिक सम्भव प्रतीत होने लगा है कि इसी प्रकार के बादल जब किसी ग्रह पर बैठ जाते हैं तो उस ग्रह पर जीवन-निर्माण होता है।

यह जैमिनीय ब्राह्मण और मैत्रीय संहिता के कथन का सर्वथा समर्थन प्रतीत होता है। प्राणी-शरीर के अंश दूसरे ग्रहों अथवा नक्षत्रों से आते हैं। यही सुपर्ण अर्थात् सोम का आशय है।

इस पर भी जो बात वैज्ञानिक समझा नहीं सकते, वह यह है कि इन सरल (ऐल्डिमाईन, ऐल्डिहाईड इत्यादि) अणुओं से प्रोटीन के जटिल अणु अपने आप बनते दिखाई नहीं देते। उनके बनने के लिए किसी जीवित प्राणी की आवश्यकता रहती है,

उदाहरण के रूप में जल (water) तथा कार्बन डाईआक्साइड (CO_2) की उपस्थिति से कार्बोहाईड्रेट्स बन गये, अनुमान नहीं लगाया जा सकता। कारण स्पष्ट है। इन दोनों 'मौलीक्यूलों' को कार्बोहाईड्रेट्स के 'मौलीक्यूल' बनाने के लिए सूर्य की ऊर्जा आवश्यक है और उसका प्रयोग करनेवाली 'क्लोरोफिल' कोषिका की आवश्यकता है। इसी प्रकार सरल अमीनो ऐसिड को जटिल प्रोटीन के 'मौलीक्यूल' में बदलने के लिए प्राणी द्वारा अन्न की ऊर्जा का प्रयोग होना चाहिये।

अभी तक हम देखते हैं कि बिना प्राणी की सहायता के जटिल अणु बन नहीं सकते।

इस विषय में वैज्ञानिकों को बताना पड़ेगा कि वह जीवित कोषाणु कहाँ से आया, जिसने पहला प्रोटीन का अणु निर्माण किया।

पृथिवी के इतिहास में ये जटिल अणु बिना जीवित कोषाणु के बनते नहीं देखे गये।

सिडनी के अवलोकन (observation) से भारतीय शास्त्र का इतना समर्थन मिलता है कि जीवन दूसरे ग्रहों से यहाँ आया। इससे और अधिक अभी कुछ नहीं जाना गया।

भारतीय वैज्ञानिक तो निश्चय से कहते हैं कि वनस्पतियाँ रोहिणी से पृथिवी पर आयीं। बीज रूप में यहाँ आयीं। बीज जीवित कोषिका (living cells) हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाश्चात्य विज्ञान यह कहता है कि यहाँ पहले एक कोषाणु जन्तु (uni-cellular animal) बना और उससे उच्चकोटि के जन्तु बने।

भारतीय विज्ञान यह मानता है कि वनस्पतियाँ बीज के रूप में पृथिवी पर आयीं। बीज तो भिन्न-भिन्न वनस्पतियों के भिन्न-भिन्न थे। इस कारण दोनों विज्ञानों में अन्तर यहाँ से ही आरम्भ होता है।

वैसे पाश्चात्य विज्ञान भी यह मानता है कि वनस्पति कोषिका पहले बनी और जन्तु कोषिका पीछे बनी।

इस विषय में विकासवाद की विवेचना करते समय हम भारतीय मत लिखेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

विकासवाद

: १ :

पूर्व के अध्याय में हमने यह बताने का यत्न किया है कि प्राणी-सृष्टि इस पृथिवी पर कैसे हुई ? दोनों विज्ञानों में मतभेद यहाँ से ही आरम्भ होता है। इस मतभेद में कारण आत्म-तत्त्व को मानने अथवा न मानने में है। पाश्चात्य विज्ञानवेत्ता अपने अनुमानों में परमात्मा और जीवात्मा को सम्मिलित नहीं करते। यही कारण है कि दोनों अनुमानों में मूल का ही भेद है।

आत्म-तत्त्व के विषय में हम एक पृथक् अध्याय में लिखेंगे। यहाँ तो हम सृष्टि-क्रम ही लिख रहे हैं। सृष्टि-रचना उस काल की बात है जिसका देखने वाला आज जीवित नहीं है। भारतीय विद्वान रचना के कथन को परम्परा-गत मानता आया है, परन्तु वह कथन तो परमात्मा के अस्तित्व को मानकर ही स्वीकार किया जा सकता है। इस कारण उसका प्रमाण नास्तिक वैज्ञानिकों और दार्शनिकों को मान्य नहीं। प्रत्यक्ष प्रमाण तो है नहीं। शब्द प्रमाण वे मानते नहीं। अतः अनुमान प्रमाण के ही आश्रय पर उस काल का रहस्य समझा जा सकता है।

पाश्चात्यों ने एक अनुमान लगाया है विकास का। इसे वे विकासवाद (evolution) कहते हैं। भारतीय वैज्ञानिक भी तत्कालीन घटना का वर्णन अनुमान प्रमाण से करते हैं। हम यह देखने का यत्न करेंगे कि किसका अनुमान ठीक आधार पर प्रतिष्ठित है। कारण यह है कि आधार रहित अनुमान सिद्धि नहीं दिला सकता।

भारतीय दर्शनशास्त्र यह मानता है—

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथाऽनुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः ॥

(ब्र० सू० २-१-११)

अर्थात्—तर्क के अप्रतिष्ठित (अर्थात् आधाररहित) होने से दूसरे भी युक्ति कर सकते हैं। ऐसी स्थिति में अनुमान की सिद्धि नहीं हो सकेगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अतः दोनों प्रकार के वैज्ञानिकों के कथन में हम आधार देखेंगे और तब अपना विचार व्यक्त करेंगे।

प्रतिष्ठित तर्क अथवा आधारयुक्त तर्क की विवेचना हम पूर्व में कर चुके हैं। प्रत्यक्ष में दो वस्तुओं अथवा घटनाओं का सम्बन्ध निश्चित रूप में जानकर एक के होने से दूसरे का होना सिद्ध माना जाता है।

पाश्चात्य वैज्ञानिक यह मानते हैं कि आरम्भ में एक-कोषिका जन्तु (unicellular animal) बना था। इस जीव का नाम सम्भवतः amoeba था।

भारतीय विज्ञान ऐसा नहीं मानता। भारतीय विद्वान यह मानते हैं कि सब जन्तु-जातियाँ (animal species) पृथक्-पृथक् बनी हैं। यह नहीं कि सब एक ही समय में बनी हों। परन्तु बनी पृथक्-पृथक् हैं। ये एक दूसरे की सन्तान नहीं।

दोनों विचार अति प्राचीन हैं। एक जाति (specie) से दूसरी जाति बनी, यह विचार यूनानी दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) ने प्रस्तुत किया था ऐसा कहा जाता है।

एक सामान्य मानव, जिसका परमात्मा के अस्तित्व पर विश्वास नहीं, वह यह कल्पना भी नहीं कर सकता कि मनुष्य जैसा जटिल प्राणी कैसे एकदम बन गया? पृथ्वी पर प्राणियों की जातियों (animal species) की संख्या लाखों ही हैं। इस कारण वह इस विशाल गणना को देख वह विचार करने लगता है कि इतनी भिन्न-भिन्न प्रकार की जातियों के पृथक्-पृथक् उत्पन्न होने से यह मानना सुगम होगा कि एक से दूसरी बनी हों।

परन्तु वह वैज्ञानिक जातियों में इतनी भिन्नता देख यह भी तो कह नहीं सकता कि इतनी भिन्नता (variation) कैसे, किन-किन घटनाओं से उत्पन्न हो गयीं? एक नास्तिक के लिए दोनों ढंग से (सब पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुईं अथवा एक से बदलकर दूसरी बनीं) वर्णन करना कठिन है।

परन्तु देखें कि ये वैज्ञानिक किस प्रकार अपनी बात को समझाते हैं।

अरस्तू के उपरान्त ईसाई मत के विस्तृत प्रचार के कारण विकास से जन्तु-जातियों की उत्पत्ति का विरोध प्रबल रहा, परन्तु सत्रहवीं-अठारहवीं शताब्दी के यूरोप के नास्तिक दार्शनिकों के प्रचार से विकास से जातियों की उत्पत्ति का विचार पुनः प्रबल होने लगा।

चार्ल्स डार्विन से पहले भी कुछ लोग थे जो ऐसी सम्भावना मानते थे। परन्तु डार्विन ने इस पर अपना ग्रन्थ 'Origin of Species' लिखा। यह ग्रन्थ सन् १८५६ में प्रकाशित हुआ। डार्विन के विचार को कि जन्तु-जातियाँ एक-दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से उत्पन्न हुईं, हरबर्ट स्पैंसर ने विकासवाद (euolution theory) कह दिया।

डार्विन ने यह विचार उपस्थित किया था कि निम्न जन्तुओं (मच्छर, कीट, पतंगा, मछली, पक्षी इत्यादि) में समानता इतनी अधिक देखी जाती है कि सम्भवतः वे एक दूसरे से उत्पन्न हुई हैं। परन्तु हरबर्ट स्पैंसर का कहना है कि सब जन्तु, अमीबा (ameba) से लेकर मनुष्य तक, एक परिवार के सदस्य हैं।

अठारहवीं शताब्दी में यूरोप के दार्शनिक बाईबल में दिये सृष्टिक्रम को नहीं मानते थे, परन्तु वे इसका बदल उपस्थित नहीं कर सकते थे। डार्विन की पुस्तक Origin of Species के प्रकाशित होते ही वे इस लँगड़े आश्रय को पा इसका प्रचार करने लगे। हरबर्ट स्पैंसर के उद्‌गार इसी मनोवृत्ति का प्रदर्शन हैं।

डार्विन द्वारा प्रस्तुत और नास्तिक दार्शनिकों द्वारा उछाला जाने वाला विकासवाद (evolution theory) का घोर विरोध भी आरम्भ हो गया। साइंस दानों ने इस पर अपना संशय उत्पन्न करना आरम्भ कर दिया।

इस वाद-विवाद का एक संक्षिप्त वर्णन 'एनसाइक्लोपीडिया-ब्रिटेनिका' में से हम दे रहे हैं। इसमें लिखा है—

Since Darwin and especially in the 20th century, doubts have been cast on the evolutonary efficacy of those factors on which Darwin himself laid most stress. The conclusion that species do in fact give rise to other species, has earned universal acceptance, and on the general relation of living things within the larger groups there is no wide divergence of opinion. It can not be said, however, that any general agreement has been reached as to the process by which the general variation in living things have been produced, nor can it be claimed that there is any consensus as to the relationship of the main groups of living things to each other. Despite these reservations it cannot be gainsaid that the history of biology since the days of Darwin may be treated as in large part a commentary on his work. The stimulus which begave to comparative morphology has given rise to a truly prodigious literature dealing with plant and animal forms.

इसका अर्थ इस प्रकार है—

डार्विन के उपरान्त और विशेष रूप में बीसवीं शताब्दी में, प्रकृति के विकासत्व की क्षमता पर सन्देह किया गया है जिस पर डार्विन ने सर्वाधिक बल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दिया था। यह परिणाम कि जन्तुओं की जातियाँ सत्य ही एक से दूसरे में बदलती हैं, लगभग सर्वमान्य हो गया है और सामान्य रूप में यह कि बड़ी-बड़ी श्रेणियों में प्राणियों के सम्बन्ध में कुछ अधिक मतभेद नहीं रहा। इस पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि उस ढंग पर सहमति हो गई है जिससे एक जन्तु-जाति दूसरी जन्तु-जाति में बदली है, न ही यह दावा किया जा सकता है कि एक प्रकार के जन्तुओं का दूसरे प्रकार के जन्तुओं से सम्बन्ध है और इसमें किसी प्रकार की सहमति है। इन मतभेदों के होते हुए भी इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि डार्विन के उपरान्त प्राणी शास्त्र का इतिहास, डार्विन के विचार की मुख्य रूप में आलोचना ही है। उस (डार्विन) ने जन्तुओं की तुलनात्मक आकृति के अध्ययन को प्रोत्साहन दिया है। इसमें वनस्पतियों और जन्तुओं के रूप का अध्ययन सम्बन्धी प्रचुर साहित्य का निर्माण हुआ है।

इस वक्तव्य को तनिक ध्यानपूर्वक पढ़ा जाए तो पता चलेगा कि डार्विन की मुख्य बात पर उत्तरोत्तर अधिक और अधिक सन्देह किया जाने लगा है।

डार्विन का कहना है कि वातावरण के प्रभाव से एक जाति के जन्तु दूसरी जाति में बदलते चले जाते हैं। यह कैसे हो सका? आजकल के वैज्ञानिकों को सन्देह है कि प्राकृतिक शक्तियाँ यह कर भी सकती हैं अथवा नहीं?

उदाहरण के रूप में मछलियों से पक्षी बन गये और पक्षियों से पशु बन गये। वैज्ञानिक प्रकृति की ऐसा कर सकने की सामर्थ्य पर सन्देह करते हैं। जब इस प्रक्रिया के किये जा सकने पर ही सन्देह है तो फिर सहमति किस बात पर है? कौन सहमत हो गये हैं और किस युक्ति के आधार पर?

यूरोपियन मतान्ध लोगों का किसी ऐसी बात पर सहमत होना जिसमें न कोई प्रमाण है और न युक्ति, इस कारण हो सकता है कि वे एक पूर्वग्रह (prejudice) में फँसे हुए हैं।

ईसाई मत का दर्शन युक्ति से सिद्ध नहीं किया जा सका। उसमें सृष्टि-रचना की कुछ बातें अलंकार रूप में लिखी हैं और ईसाई पादरी उन अलंकारों का अर्थ नहीं समझा सके।

उदाहरण के रूप में बाईबल के उत्पत्ति-प्रकरण में लिखा है कि छः दिन तक सृष्टि-रचना होती रही और सातवें दिन परमात्मा आराम कर रहा है।

यह सृष्टि-रचना संबंधी भारतीयज्योतिष शास्त्र के कार्यक्रम (time table) का एक अंश है। जगत् की अवधि ४,३२,००,००,००० वर्ष है। इसे १४ भागों में बाँटा गया है। प्रत्येक भाग (काल) की अवधि ३०,८५,७१,४२७ वर्ष होती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्योतिष शास्त्री कहते हैं कि छः मन्वन्तर तक सृष्टि-रचना होती रही है। सातवें मन्वन्तर में रचना यौवन पर है और आठवें मन्वन्तर में सृष्टि में ह्रास आरम्भ हो जायेगा। ईसाई पादरी इस मूल ज्ञान से अनभिज्ञ होने के कारण बाईबल के दिन को सौर-दिन ही समझते रहे। यह बात वैज्ञानिकों को संतोष नहीं करा सकी।

परन्तु वैज्ञानिक पादरियों से कम मूढ़मति प्रतीत नहीं होते। उन्होंने पादरियों की तो हँसी उड़ाई, परन्तु स्वयं क्या कहते हैं, उस ओर उनका ध्यान नहीं।

एनसाइक्लोपीडिया का लेखक लिखता है कि प्रकृति की क्षमता पर सन्देह किया जा रहा है कि वह ऐसा (जाति परिवर्तन) कर सकती है अथवा नहीं। यह भी दावा नहीं किया जा सकता कि मुख्य श्रेणियों में अदला-बदली हुई होगी। न ही यह कहा जा सकता है कि परिवर्तन कैसे हुए।

इस पर भी वैज्ञानिक मानते हैं कि जाति बदली हैं। यही मूढ़ता है। डार्विन के वाद का खण्डन करने वाले तो बहुत हुए हैं, परन्तु एक डाक्टर ऐगासिज़ (Agassiz) ने विकासवाद का खण्डन अति स्पष्ट शब्दों में किया है।

डाक्टर ऐगासिज़ (१८०७-१८७३) एक अति विख्यात, वनस्पतिशास्त्र और भूगर्भशास्त्र का विद्वान हुआ है।

इसका जन्म स्विटज़रलैण्ड में हुआ था। ऐरलांगन (Erlangen) में पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त कर उसने चिकित्साशास्त्र म्युनिख़ में पढ़ा। पहले पैरिस में और फिर न्यूकटेल (Neuchatel) में पढ़ाई का कार्य करता रहा। पीछे यह हारवर्ड विश्वविद्यालय में शोध-कार्य करने लगा।

इसके विषय में यह लिखा गया है—

Agassiz was, beyond question, one of the ablest, wisest, and best informed of the biologists of his day, it is often asked why his attitude towards Darwinism was, throughout all his lifetime, cold and unsympathetic. It seems possible that his position was determined in part by a misunderstanding.

...He once said that in his studies of fossils, he "was on the verge of anticipating Darwinism," but was withheld by the discovery that, "we had the higher fishes first." In a sense this was true, for the brain development of the sharks is higher, as a whole, than that of the bony fishes. Ibid. Vol. I. p. 320d.

इसका अर्थ है—

इसमें सन्देह नहीं कि एगासिज़ अपने काल के प्राणीशास्त्रियों में श्रेष्ठतम,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वश्रेष्ठ बुद्धिमानों में से एक था। यह कहा जाता है कि वह अपने जीवन भर डार्विनवाद के विरुद्ध रहा है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी स्थिति एक सीमा तक गलत समझी गयी है।

उसने एक बार कहा था कि पुराने कंकालों का अध्ययन करते हुए वह डार्विन मत को मानने ही वाला था, 'परन्तु एक खोज से मैं रुक गया। मैंने देखा कि उनन्त मछलियाँ अधिक पुरानी हैं।'

डाक्टर ऐगासिज अपनी पुस्तक 'Principles of Zoology' के पृष्ठ २६५-६६ पर लिखते हैं—

There is manifest progress in the succession of being on the surface of the earth. This progress cosists in an increasing similarity of the living fauna, and among the vertebrates especially in their increasing resemblance to man...But this connectioni s not the consequence of a direct lineage between the fauna of different ages. There is nothing like parental descent connecting them. The fishes of the palaeozoic age are in no respect the ancesstors of the reptiles of the secondary age. Nor does man descend from the mammals which preceded in the Tertiary age. The link by which they are connected is of a higher and immaterial nature, and Himself, whose aim in forming the earth, in allowing it to undergo successivelv all the different types of animals which have passed away, was to introduce man upon the surface of our globe. Man is the end towards which all the animal creation has tended from first appearance of Palaeozoic fishes.

(वैदिक सम्पत्ति—खण्ड-२, पृष्ठ १५९ से उद्धृत)

अर्थात्—भू-स्थल पर जन्तुओं में स्पष्ट और निरन्तर प्रगति देखी जाती है। यह प्रगति जीवधारियों में, विशेष रूप में रीढ़ की हड्डी वाले जानवरों में मनुष्य के समान होने की ओर है।

...परन्तु यह सम्बन्ध भिन्न-भिन्न प्रकार के जन्तुओं में जो भिन्न-भिन्न जातियाँ उत्पन्न हुईं, सन्तान के सम्बन्ध का नहीं है। उनमें किसी प्रकार का पूर्वज और सन्तान का सम्बन्ध नहीं है। पेलोज़ोइक-युग की मछलियाँ किसी प्रकार से भी दूसरे युग के रेंगने वाले जानवरों की पुरखा नहीं थीं। न ही मनुष्य उन दूध पिलाने वाले जानवरों की सन्तान है जो उससे पहले टर्शयरी युग में हुए थे। इनमें रिश्ता शरीर का नहीं। यह उस उच्च तत्त्व परमात्मा का है जिसका इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथ्वी को बनाने का उद्देश्य और इस पर एक-दूसरे के उपरान्त भिन्न-भिन्न प्रकार के जन्तुओं को बनाने का प्रयोजन, जो सम्पन्न हो चुका है, मनुष्य की सृष्टि बनाने का है। यह उद्देश्य पैलो-ज़ोइक युग में मछलियों के बनने से आरम्भ हुआ था।

इस प्रकार के अन्य विद्वान् भी हुए हैं जिन्होंने डार्विन का विचार, कि एक प्रकार के जन्तुओं से दूसरी प्रकार के जन्तु बने, स्वीकार नहीं किया।

परन्तु इसे न स्वीकार करने से परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार करना पड़ता है। यह आजकल के वैज्ञानिक मानने के लिये तैयार नहीं होते। इस कारण वे विकासवाद के असिद्धवाद को आँखें मूँदकर स्वीकार कर रहे हैं।

यह माना जाता है—

A large part of the work (on biology) since about 1880 in this direction has been done in confirmation or refutation of his (Darwin's) views.

Ency. Britt. Ed.1967. vol. 3. P. 651 b.

अभी तक यह माना जाता था—

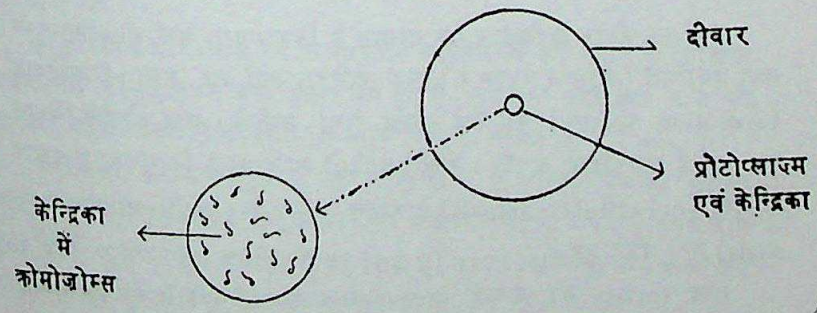
...Spontan genetics are not possible. Ibid. p. 652 b.

अर्थात्—सन् १८८० के उपरान्त इस दिशा में बहुत काम (खोज) इस (डार्विन के) विचार के खण्डन अथवा समर्थन में किया गया है।

साथ ही जैनेटिक्स की उत्पत्ति स्वतः सम्भव नहीं।

जैनेटिक्स (genetics) का अभिप्राय है कि जन्तु की जीवित कोषिका (living cell) वह सूक्ष्मतम पदार्थ है जिसके विषय में यह माना जाता है कि वह जन्तु का स्वभाव और उसकी रूप-रेखा बनाता है।

एक जीवित कोषिका की दीवार के भीतर एक तरल पदार्थ होता है जिसे प्रोटोप्लाज़्म (protoplasm) कहते हैं। प्रोटोप्लाज़्म के मध्य में एक केन्द्रिका

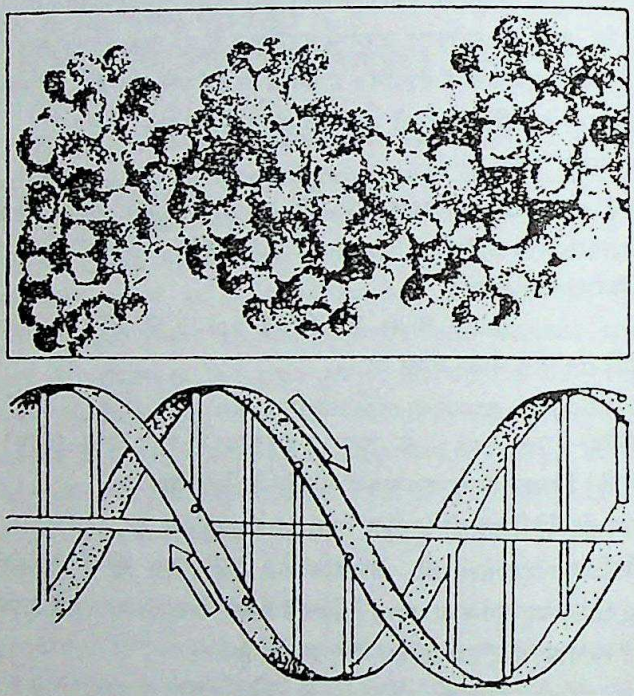


CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(nucleus) होती है। केन्द्रिका में धागों की भाँति क्रोमोज़ोम्स होते हैं। इनके धागों के से पदार्थ के साथ छोटे-छोटे फलों की भाँति गोले लगे रहते हैं। इनको जीन (gene) कहते हैं। यह मनुष्य की एक कोषिका में कई लाख होते हैं।

यह कहा जाता है कि इन जीनों की उत्पत्ति स्वतः नहीं हो सकती। इन जीनों के कार्य और इनके निर्माण के विषय में आगे चलकर लिखेंगे।



क्रोमोजोम्स में जीन

जहाँ तक जीवन के विकास का सम्बन्ध है, विकासवाद कोई भी युक्ति-युक्त तथा प्रमाणित (अनुमान प्रमाण से) तथ्य उपस्थित नहीं कर सका। विकासवाद (evolution theory) का अर्थ समझ लेना चाहिये। शब्द कोश में विकास का अर्थ है उत्तरोत्तर प्रगति। विकासवादियों का दावा है कि सरलतम प्रकार के जन्तु (uni-cellular aninals) से जटिल प्रकार के (multi-cellular animals) जन्तु प्रकट हुए।

शब्द 'theory' का अर्थ है 'imaginative contemplation of reality अर्थात् किसी सत्य के विषय में काल्पनिक विन्चर।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपस्थित सत्य यह है कि जन्तुओं की असंख्य जातियाँ पृथिवी पर दिखायी देती हैं। प्रश्न यह है कि ये कहाँ से आ गयीं ?

वर्तमान में तो प्रत्येक प्राणी माता-पिता से उत्पन्न होता है। परन्तु आदि सृष्टि के आरम्भ में इन सबके माता-पिता एक थे अथवा जितनी जातियाँ हैं उतने माता-पिता थे, इस प्रश्न के उत्तर में विकासवाद एक काल्पनिक विचार है।

इस विषय में अन्य कल्पनायें भी हैं। एक कल्पना हमने डॉक्टर ऐगासिज़ के शब्दों में ऊपर रखी है। एक भारतीय कल्पना भी है। वह यह कि सब जन्तुओं के माता-पिता पृथक्-पृथक् थे। इस कल्पना को व्याख्या से आगे चलकर लिखेंगे।

कल्पना अनुमान-प्रमाण से सिद्ध हो सके तो ठीक, अन्यथा यह मान्य नहीं हो सकती। यह हम आगे चल कर देखेंगे कि डार्विन का विचार कहाँ तक सिद्ध है।

वैसे तो इसके विषय में वैज्ञानिकों को ही संदेह है। हमने ऊपर वर्णन किया है कि वैज्ञानिक यह संदेह करते हैं कि क्या प्रकृति में जाति परिवर्तन करने की सामर्थ्य है ? वैज्ञानिक यह भी दावा नहीं कर सकते कि किस प्रक्रिया से जातियाँ बदलीं।

इस पर भी यूरोपियन शैली पर शिक्षित विद्वान् जाति परिवर्तन को ब्रह्म वाक्य की भाँति मानकर इतिहास और आकृति विज्ञान (morphology) के मनगढ़न्त सिद्धान्त उपस्थित करने लगे हैं।

अतः यह देखना होगा कि विकासवादियों की कल्पना अनुमान-प्रमाण पर खरी उतरती है अथवा नहीं। प्रत्यक्ष-तो उस समय का उपलब्ध नहीं। जो कुछ है उसे विकासवादी मानते नहीं। परन्तु अनुमान भी तो किसी प्रत्यक्ष नियत संबंध पर ही आधारित ही सकता है।

विकासवाद आज के विद्वानों के मस्तिष्क में इतना घर कर चुका है कि इसे निकालने के लिए कुछ अधिक व्याख्या से अध्ययन करना पड़ेगा। आइये, देखें कि यह है क्या ?

(१) डार्विन और उसके पूर्व के वैज्ञानिक बाईबल के इस कथन से परेशान थे कि सृष्टि को हुए केवल आठ हजार वर्ष हुए हैं। सृष्टि को इतने कम काल की मानकर जाति-परिवर्तन का सिद्धान्त मान्य नहीं हो सकता था।

वैज्ञानिकों की गणनानुसार एक जन्तु-जाति से पृथिवी पर की असंख्य जातियाँ बनने में अरबों नहीं तो करोड़ों वर्ष अवश्य लगे होंगे। परन्तु उनके पास ऐसा कोई प्रमाण नहीं था जिससे यह सिद्ध हो सकता कि सृष्टि क्रम चलते हुए लाखों वर्ष हो चुके हैं।

यद्यपि यूनानी दार्शनिक अरस्तू इत्यादि यह मानने को तैयार नहीं थे कि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी पर की सब जन्तु जातियां पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुईं, परन्तु तब परमात्मा का वह स्वरूप नहीं माना जाता था, जिसका पीछे बाईबल में वर्णन किया गया है। इस कारण सुकरात और प्लेटो इत्यादि आस्तिक दार्शनिक अरस्तू इत्यादि का मुख बन्द कर देते थे।

मिस्री और यूनानी ज्ञान-विज्ञान को ईसाइयों तथा मुसलमानों ने सर्वथा विनष्ट कर दिया और वह कब्रों के साथ दबी कुछ पुस्तकों में रह गया। इस ज्ञान-विज्ञान के स्थान यहूदियों का अधूरा ज्ञान प्रचलित हुआ और पीछे मुसलमानों ने उस अधूरे ज्ञान को भी विनष्ट कर दिया।

इन दोनों (यहूदियों और मुसलमानों) की राजनैतिक सामर्थ्य ने, जो कुछ शेष उन देशों में था, उसे भूम्यान्तर्गत कर दिया और जो कुछ स्मरण रहा उसको समझाने वाले नहीं रहने दिये गए।

ईसा के निधन के समय भी यहूदियों ने बहुत अन्धेरगर्दी मचायी हुई थी और पीछे ईसाई तो प्रायः अज्ञानी लोग थे। रही सही बात पूर्वी एशिया, यूनान और मिस्र के मुसलमानों की विनाशलीला ने समाप्त कर दी।

अतः सोलहवीं शताब्दी के उपरान्त ऐसा काल आया जब बाईबल पर सन्देह करने वाले उत्पन्न हुए। इसे पुनरुत्थान का काल कहते हैं। वास्तव में इसे पुनरुत्थान कहना भी गलत है। इसे सन्देहात्मक काल ही कहा जा सकता है।

इस समय यूरोप और भारत में सम्पर्क बनने लगा और भारतीय शास्त्रों के प्रकाश में बाईबल और मिस्र तथा यूनानी दार्शनिकों के मत का स्पष्टीकरण होने लगा तो यहूदी और ईसाई घबरा उठे और इन्होंने बड़े-बड़े संस्थान स्थापित कर भारतीय ज्ञान विज्ञान को बदनाम करने का यत्न आरम्भ कर दिया।

भारतीय मत बाईबल के सृष्टि-क्रम की सफाई उपस्थित करने की भी क्षमता रखता था। साथ ही यह नास्तिक दार्शनिकों को भी सन्मार्ग दिखाने में समर्थ था। इस पर भारत के अंग्रेज़ शासकों को चिन्ता लग गयी।

अतः ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को ही अपने ज्ञान-विज्ञान से विमुख करने के लिए, शिक्षा पद्धति अपने हाथ में लेकर मूर्ख पढ़े-लिखे उत्पन्न करने आरम्भ कर दिये।

यह है वर्तमान स्थिति। इतिहास के प्रोफेसर क्या और ज्ञान-विज्ञान के अध्यापक क्या, उनके लिए भारत में आज से डेढ़ हजार वर्ष से पुराना कुछ नहीं। कारण यह कि उस समय इंग्लैण्ड और फ्रांस में लोग जानवरों की खालें पहनते थे। वे नर-मांस खाते थे और किसी प्रकार की भाषा नहीं जानते थे।

इन लोगों ने हिन्दू सन्तान को भी आज से डेढ़-दो सहस्र पूर्व जंगली और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

असभ्य बताने के लिए इतिहास को विकृत करने का यत्न किया।

ऐसा करने में उन्हें विकासवाद एक बहुत कारगर साधन प्रतीत हुआ।

(२) विकासवाद की जन्मदाता समस्या यह है कि पृथिवी पर प्राणी-सृष्टि कैसे हुई? सृष्टि उत्पत्ति की खोज की दौड़-धूप में विकासवाद की कल्पना की गयी है। यह किसी परमात्मा-तत्त्व की सहायता के बिना प्राणियों के बन जाने को सिद्ध करने का प्रयास है।

(३) एक से अनेक होने में कारण प्रकृति का स्वाभाविक चुनाव (natural selection) कहा जाता है।

प्रकृति अपने अनुकूल रह सकने वाले प्राणियों को जीवित रहने देती है। जो प्रकृति का विरोध करते हैं वे मिट जाते हैं।

(४) इसी का दूसरा रूप है survival of the fittest; अर्थात् संघर्ष में योग्यों का बच जाना। संघर्ष का अर्थ है विपरीत प्राकृतिक परिस्थितियों में प्राणी का अपने को जीवित रखने का प्रयत्न। इस प्रयत्न में वह अपने में परिवर्तन उत्पन्न करने में सफल हो जाता है। यह है संघर्ष में योग्य का बचना। अर्थात जो जन्तु-जातियाँ बदल रही प्राकृतिक परिस्थितियों में स्वयं बदलकर प्रकृति के अनुकूल बनने की योग्यता रखती हैं, वे बच गयीं।

संख्या तीन और चार में बात एक ही कही गयी है। इसमें अन्तर यह है कि एक में प्रकृति की विनाशलीला द्वारा अयोग्य जन्तु-जातियों के विनष्ट होने की बात है और दूसरे में जातियों में अपने अनुकूल बनाने के लिये परिवर्तन उत्पन्न करने की बात है।

डार्विन का विचार है कि बदल रही प्रकृति की स्थिति में जन्तु-जाति का अपने को बचाने के लिये प्रयत्न ही जन्तुओं के शरीर में परिवर्तन उत्पन्न करता है।

(५) फ़र्न (fern) अर्थात् पर्णाग पौधों में जाति परिवर्तन हो रहा माना जाता है। पर्णाग पौधों का एक उदाहरण गीली वस्तुओं पर फफूंदी का आ जाना है। यह फफूंद बहुत छोटे-छोटे पौधे होते हैं।

इन पौधों में एक ही स्थान पर स्त्री और पुरुष कण उपस्थित देखे जाते हैं। कभी-कभी तो एक ही कोषिका (living cell) में ये होते हैं।

इन पौधों में यह भी देखा गया है कि इनके पुरुष कण (sperm) जल में तैरते रहते हैं और उचित स्थान पर नया पौधा बना देते हैं। कभी एक पौधा जो पहले उभयलिंगी होता है, कभी स्त्री-लिंगी बन जाता है और कभी पुरुष-लिंगी (hermo-phrodite)। इससे विकासवादियों ने यह विचार किया

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि परिस्थितियाँ (environments) बदलने पर नवीन जातियाँ बन सकती हैं।

(६) जाति परिवर्तन का एक अन्य प्रमाण पौलिमौर्फिज़्म (poly-morphism) में उपस्थित समझा जाता है। पौलिमौर्फिज्म से अभिप्राय है कि जैसे पहाड़ों पर श्वेत रंग के कौर मिलते हैं अथवा गर्म देशों में मनुष्य कृष्ण वर्णीय हो जाता है। पौलीमौर्फ़िज्म का अर्थ है existance of one specie in several forms.

(७) डार्विन के वाद (theory) की विवेचना में कई त्रुटियाँ थीं। उससे पीछे आने वाले वैज्ञानिकों ने अपने विचार के घोड़े दौड़ाये हैं और उन त्रुटियों को दूर करने का यत्न किया है। अतः अब एक नया वाद उपस्थित किया गया है जिसे नवीन डार्विन मत (neo Darwinism) का नाम दिया गया है। इसमें मण्डल इत्यादि वैज्ञानिकों ने अपनी खोज पर विवेचना करते हुए इस नवीन मत का कथन किया है।

(८) नये वैज्ञानिकों ने भूगर्भ शास्त्र के विकास से यह विचार उपस्थित किया है कि पृथ्वी पर जीवन करोड़ों वर्षों से उपस्थित है। इससे वे यह समझने लगे हैं कि इस लम्बे काल में जाति परिवर्तन सम्भव है। पृथ्वी पर की भिन्न-भिन्न परतों में पाये गये मानव तथा जन्तुओं के कंकालों (fossils) से वे यह कल्पना करने लगे हैं कि उन कंकालों वाले जन्तु वर्तमान मानवों के पूर्वज थे।

उदाहरण के रूप में आस्ट्रेलिया में भूमि में दबे एक मानव की सी खोपड़ी निकली है। उस खोपड़ी की लम्बाई-चौड़ाई देखकर यह अनुमान लगाया गया है कि वह खोपड़ी किसी ऐसे जन्त की है जो वन-मानुष से मिलता जुलता है। इसका अभिप्राय यह समझा गया है कि वैसी खोपड़ी वाला जानवर मनुष्य का पूर्वज था।

(९) जीन के आविष्कार को डार्विन के विकासवाद का समर्थक माना जाता है। खोज करने वाले वनस्पति शास्त्र (botany) के ज्ञाता आई० जी० मण्डल (I.G Mandel) हुए हैं। इसने मटर की जाति पर खोज कर यह पता किया है कि इनमें दो प्रकार के परिवर्तन होते हैं। एक को 'जीनोटाइप' (genotipe) कहते हैं और दूसरी प्रकार के परिवर्तनों को 'फ्रीनोटाइप' (phrenotype) कहते हैं। 'जीनोटाइप' परिवर्तन नसल-दर-नसल चलते हैं और 'फ्रीनोटाइप' केवल एक जीवन तक ही रहते हैं। सन्तति बदलने पर पुराना रूप स्वीकार कर लेते हैं।

श्री मण्डल का यह मत है कि 'जीन' का क्रम बदलने से न केवल सन्तति का स्वभाव बदलता है, वरन जाति भी बदल जाती है। अतएव मण्डल की खोज

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को डार्विन के विकासवाद का समर्थक माना जाता है।

जैनेटिक्स पर खोज चल रही है और यह कहा जाता है कि नर-मादा का अन्तर, भले-बुरे स्वभाव का अन्तर और जन्तुओं में अन्य दिखाई देने वाले भेद, जीन के क्रम और संख्या पर निर्भर करते हैं।

यह दावा किया जाता है कि जीन दो प्रकार के रासायनिक पदार्थों D. N. A. और R. N. A. से बने हैं। ये रासायनिक पदार्थ प्रयोगशाला में निर्माण किये जा सके हैं। अतः 'जीन' (फलतः जन्तु) निर्माण किये जा सकते हैं।

इन नौ अनुच्छेदों में विकासवाद की संक्षिप्त रूप-रेखा और इसमें प्रमाणों तथा युक्तियों का उल्लेख किया है। और भी बहुत कुछ कहा गया है, परन्तु हम समझते हैं कि उपर्युक्त बातें ही तत्त्व की हैं।

: २ :

विकासवाद की विवेचना

जहाँ तक प्राणी सृष्टि का सम्बन्ध है, पूर्व अध्याय में बता आये हैं। भारतीय विज्ञान में यह माना जाता है कि—(क) सब प्राणी पृथक्-पृथक् रचे गये। एक से दूसरी जन्तु-जाति नहीं बनी। (ख) सृष्टि-रचना तब हुई जब पृथिवी का तापमान प्राणियों के रहने योग्य हुआ। जब जल और वायुमण्डल (atmosphere) बन गया। (ग) पहले वनस्पतियाँ उत्पन्न हुईं। बिना वनस्पतियों के प्राणी-सृष्टि सम्भव नहीं। (घ) वनस्पतियों के बीज तथा प्राणियों का वीर्य (तेज) दूसरे ग्रहों अथवा नक्षत्रों से आये। तेज वीर्यरूप बनकर आया और पृथिवी पर गर्भ स्थित हुआ। इसमें अन्तरिक्ष की शक्तियाँ सोम, मरुत इत्यादि सहायक हो गयीं।

सृष्ट-कार्य का पूर्ण श्रेय तैजस् अहंकार और वैकारी अहंकार (electrons and protons) को ही दिया गया है। इन दोनों के संयोग से मन और दस इन्द्रियों का निर्माण होता है। दस इन्द्रियों से अभिप्राय है शरीर में दस प्रकार के कार्य करने की सामर्थ्य। इन्द्रियों के गोलक (tissues) पृथक् हैं। वे शरीर का अंग है। (ङ) शरीर कोषिकाओं और कोषिकाओं में मेल से बना है। कोषिका के निर्माण में आधुनिक वैज्ञानिक यत्न कर रहे हैं। वे इसमें भी सफल नहीं हो रहे, परन्तु इन गोलकों (tissues) के बन जाने पर भी इन्द्रियों का निर्माण पृथक् है। इस दिशा में भी वर्तमान वैज्ञानिक कम्प्यूटर बनाकर इन्द्रियों का कार्य यन्त्र से करने का यत्न कर रहे हैं। (च) शरीर, इन्द्रियाँ, मन के बन जाने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर भी, इनसे पृथक् एक तत्त्व जीवात्मा है। भारतीय वैज्ञानिक समझते हैं कि इसको लाये बिना प्राणी का निर्माण पूर्ण नहीं हो सकेगा।

जीवात्मा और परमात्मा के विषय में हम एक पृथक् अध्याय में लिखेंगे। यहां इतना बताने से ही प्रयोजन है कि प्राणी में शरीर, इन्द्रियां और जीवात्मा तीन आवश्यक अंग हैं। इनका निर्माण और संयोग ही प्राणी है।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों का मत है कि पहले एक-कोषिका (uni-cellular animal) जन्तु बना। वह पृथिवी पर बदलती परिस्थितियों से संघर्ष (struggle करता हुआ पहले समूहों में रहने लगा। पीछे कोषिकाओं में कार्य कार्य-विभाजन (division of labour) कर जटिल प्राणी बन गया।

जीवन-संघर्ष में यह सम्भव है अथवा नहीं, यहाँ विचारणीय नहीं। विचारणीय तो यह है कि कोषिका की केन्द्रिका में जो परिवर्तन हुए, क्रोमोज़ोम्स की तथा जीन की संख्या और क्रम व समूह बनने और एक शरीर में कार्य-विभाजन से पृथक् कर्म हैं।

कोषिका के भीतर के परिवर्तन भी संघर्ष के परिणाम स्वरूप हो सकते हैं, यह सिद्ध नहीं किया जा सका।

अभी तक तो स्वतः जीन का आविर्भाव तथा उनके क्रम में परिवर्तन के प्रमाण नहीं मिले।

भारतीय विज्ञान शरीर की कोषिकाओं में, कोषिका की केन्द्रिका के भीतर होने वाले परिवर्तन बाहरी संघर्ष से सम्बन्धित नहीं मानता।

मॉर्फ़ोलॉजिकल (रूप-रंग में) परिवर्तन तो जीवन-संघर्ष में सम्भव है, परन्तु जैनेटिक परिवर्तन सम्भव नहीं। अतएव जीवन-संवर्ष (struggle for life) में जाति परिवर्तन (change in species) सम्भव नहीं।

पाश्चात्य वैज्ञानिकों का मत विकासवाद ही है जिसके विषय में हमने तत्त्व की बातें उक्त नौ परिच्छेदों में लिखी हैं। उनके विषय में हमारी विवेचना इस प्रकार है—

(१) मिस्र, यूनान, मैसोपटोमियां, सुमेर और यहूदी बाईबल का सृष्टि सम्बन्धी मत भारतीय सृष्टि-रचना का अधूरा और विकृत वर्णन ही है।

भारतीय इतिहासज्ञ मानते हैं कि मानव सृष्टि की रचना आज से लगभग ३८ लाख वर्ष पूर्व हुई थी। यह रचना कुछ एक मानवों से जो अमैथुनीय उत्पत्ति से सुमेरु पर्वत पर हुए थे, आरम्भ हुई। सुमेरु उत्तरी ध्रुव क्षेत्र को कहा जाता है।

परन्तु आज से लगभग २१ लाख ६० हजार वर्ष पूर्व पूर्ण सृष्टि जल-प्लावन से विनष्ट हो गयी थी। इस जल-प्लावन के पश्चात् पुनः सृष्टि-रचना हिमालय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के ब्रह्मसर (वर्तमान मानसरोवर) के तट पर हुई। ज्यों-ज्यों जल उतरता गया मनुष्य सबसे पहले भारत में गंगा, सरस्वती, यमुना, सिन्धु इत्यादि नदियों के तट के साथ-साथ चलता हुआ आया और फिर भारत से वह अफ़गानिस्तान, ईरान, मैसोपटोमियाँ, सुमेर,ईरान इत्यादि देशों को गया। इस प्रवसन (migration) को लाखों वर्ष लगे और इसमें वे मूल ज्ञान को बहुत कुछ भूल गये। उसमें कई बातें उन्होंने अपने पास से मिला लीं।

बीजरूप में भारतीय विज्ञान ही उनमें विद्यमान है। आत्मा, रचना में 'आपः' और प्राणी-रचना में सूर्य से उत्पत्ति इत्यादि का एक संक्षिप्त संकेत, हम पूर्व अध्याय में दे आये हैं।

वर्तमान यूरोपियन दार्शनिकों और वैज्ञानिकों का वास्ता पड़ा है ईसाइयों से। उनकी बाईबल में सत्य ज्ञान का विकृत और अधूरा रूप ही मिलता है। साथ ही ईसाई पादरी उस अधूरे ज्ञान की भी ठीक ढंग से विवेचना नहीं कर सके।

उदाहरण के रूप में परमात्मा ने मिट्टी का पुतला बनाया और उसमें रूह फूंक दी। यह केवल एक अलंकार है।

पंच भूतों के पुतले में जीवात्मा वायु की भाँति आता है। (गीता १५-८) छान्दोग्य उपनिषद् में लिखा है, परमात्मा का तेज प्रकृति में जीवन उत्पन्न करने वाला हुआ।

यदि अंग्रेज़ों ने राजनीतिक उद्देश्यों से भारत के शास्त्रों को बदनाम न किया होता तो अब तक सृष्टि-क्रम का पूर्ण रहस्य विद्वानों के सम्मुख आ चुका होता। यदि स्वराज्य सरकार ने भी असत्य विज्ञान की शिक्षा बन्द कर दी होती तब भी इस समय तक बहुत कुछ हो चुका होता और पाश्चात्य वैज्ञानिकों को उनके अधूरे ज्ञान का भास करा दिया जाता।

अस्तु ! वैज्ञानिकों को अब सत्य ज्ञान से अनभिज्ञ ईसाईयों का नहीं, वरन् भारतीय दार्शनिक और वैज्ञानिकों की युक्ति का उत्तर देना होगा।

(२) विकासवाद एक विचारमात्र है। यह सिद्ध सिद्धान्त नहीं। इसी कारण इसे थ्योरी (theory) ही कहते हैं।

विकासवाद किसी सत्य घटना की वैचारिक कल्पना ही है। कल्पना भी सत्य हो सकती है यदि यह प्रतिष्ठित अनुमान से सिद्ध हो सके। जाति-परिवर्तन का सिद्धान्त अनुमान-प्रमाण से सिद्ध नहीं होता।

डार्विन मलाया और दक्षिणी अमेरिका में भाँति-भाँति के जीव-जन्तुओं को देख, उनको एक-दूसरे से रूपरंग में मिलता देख यह कल्पना करने लगा था कि सब एक जन्तु की सन्तान हो सकते हैं। परन्तु इस कल्पना को आधार बनाकर निश्चय

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कर सका। रूप-आकृति में समानता अथवा भिन्नता जाति-समानता नहीं कही जा सकती। जाति जन्म से होती है। समान जाति में सन्तानोत्पत्ति होती है। इसमें बाहरी रूप-रंग नहीं, वरन् वीर्य और रज में समानता की बात है। एक हब्शी एक युरोपियन से सर्वथा भिन्न होता हुआ भी उसका सजातीय है। दोनों में सन्तान हो सकती है। परन्तु एक भेड़ और एक कुत्ते में सन्तानोत्पत्ति नहीं हो सकती। वे सजातीय नहीं हैं। भले ही दोनों श्वेत रंग के हों, दोनों की पीठ पर बड़े-बड़े बाल भी हो सकते हैं। दोनों के कान लम्बे-लम्बे भी हो सकते हैं।

अतः डार्विन की कल्पना कि एक जाति दूसरी जाति से उत्पन्न हुई, एक निराधार कल्पना थी। वस्तुस्थिति तो यह है कि पृथिवी पर असंख्य जन्तु-जातियाँ हैं, परन्तु एक से दूसरी परिवर्तित हो बनी है, सिद्ध नहीं हो सका। यह कल्पना तो है, परन्तु निराधार है।

प्रतिष्ठित अनुमान है किसी प्रत्यक्ष सम्बन्ध से परोक्ष की कल्पना। परन्तु प्रत्यक्ष सम्बन्ध है नहीं।

कभी समीप-समीप की जातियों में वीर्य के आदान-प्रदान से सन्तान हो जाती है। जैसे घोड़े और गधे के संयोग से खच्चर उत्पन्न होते हैं, परन्तु यह नवीन जाति का निर्माण नहीं है। खच्चर की सन्तान नहीं हो सकती। यह तो सन्तरे को नींबू की प्योंद लगाने की बात है। इस पर भी प्योंदी फल अथवा फूल बीज से नयी प्रकार का पेड़ नहीं बना सकते। ऐसे समागम से भी नवीन जाति निर्माण नहीं होती।

अतः जातियों से नवीन जाति की रीति प्रकृति में नहीं है। इसलिए हम कहते हैं कि यह वैचारिक कल्पना (imaginative contemplation) निराधार है। यह प्रतिष्ठित अनुमान से सिद्ध नहीं होती।

(३) प्रकृति का चुनाव योग्यों के लिए (struggle for existance) और जीवन संघर्ष में योग्यों का बच जाना (survival of the fittest), ये दोनों कोरे नारे हैं। इनके विषय में इतना और समझ लेना चाहिए की जन्तु-जाति वर्तमान विज्ञान के अनुसार कोषिका की केन्द्रिका में क्रोमोज़ोम्स और जीन की संख्या और क्रम के आधार पर मानी जाती है। सिद्ध यह करना चाहिए कि बाहरी प्राकृतिक परिवर्तनों से केन्द्रिका में जीन का क्रम बदलता है अथवा नहीं।

निष्ठुर प्रकृति की कठोरता में प्राणी मर तो सकता है, परन्तु बदलता है, यह सिद्ध नहीं हो सका।

(४) योग्य का प्राकृतिक कोप से बच जाना सम्भव है। परन्तु वे बचे इस कारण हैं क्योंकि उनकी कोषिकाओं में जीन की संख्या और क्रम बदल जाता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिद्ध नहीं। यह 'योग्यों का बच जाना' का नारा उस समय लगाया गया था जब अभी कोषिका की केन्द्रिका में जीन का जन्तु जाति से सम्बन्ध पता नहीं था। यह भी अभी निश्चय से नहीं कहा जा सकता कि मनुष्य की कोपिका में लाखों जीन में से दस-बीस कम हो जाने से क्या प्रभाव होगा ?

अतः योग्यों का प्रकृति के कोप से बच जाने का सम्बन्ध मरने-जीने से तो है और शारीरिक सहन-शक्ति से है, इसका जाति निर्माण के साधनों से नहीं।

भारतीय वैज्ञानिक यह मानते हैं कि जो जातियां प्राकृतिक कोप को सहन नहीं कर सकीं मर-मिट गयी हैं। परन्तु वे इस प्रकार नहीं मानते कि एक मद्रासी हिमालय की ऊँचाइयों पर रहते हुआ बचा रह सकता है तो उसकी कोषिकाओं व केन्द्रिकाओं में जीन का क्रम और संख्या बदल गयी है। भारतीय विज्ञान में जनन कोपिकाओं को रेतस् कहते हैं। सहन शक्ति होने से प्रकृति के कोप से बच जाने का अभिप्राय यह नहीं कि रेतस् में अन्तर पड़ जाता है।

(५) पर्णांग (fern) पौधों के बीज कोपिकाओं में नर और मादा कण साथ-साथ होने से यह कैसे सिद्ध हो गया कि जाति परिवर्तन हो रहा है ?

हाँ, विचारणीय स्थिति यह है कि कुछ पर्णांग उभयलिंगी होते हैं और कभी वे एक लिंगी होकर स्त्रीलिंगी हो जाते हैं और कभी पुरुष लिंगी। यह विशेषता अवश्य है, परन्तु क्या यह देखा गया है कि पुल्लिगी और स्त्रीलिंगी उभयलिंगियों से भिन्न जाति के हैं ? उनके क्रोमोज़ोम्स और जीन देखने से पता लग सकता था। ऐसा कोई प्रमाण अथवा अवलोकन (observation) उद्धृत नहीं मिला जिसमें जब उभय-लिंगी पुल्लिगी बना तो वह भिन्न जन्तु-जाति का हो गया और जब स्त्री-लिंगी हुआ तो भिन्न जाति का हो गया।

इस घटना का अर्थ यह है कि उभय-लिंगी पर्णांग में स्त्रीलिंगी और पुरुष-लिंगी कोपिकायें भिन्न-भिन्न हैं। वे एक ही कोपिका समूह में हैं अथवा भिन्न-भिन्न कोपिका समूहों (cell colonies) में, यह किसी प्रकार से अन्तर उत्पन्न नहीं करता।

यह इस प्रकार है कि यदि एक कबील म स्त्री और पुरुष वर्ग दोनों हों और किसी कारण से कबीले के पुरुष कबीले को छोड़कर दूसरे की स्त्रियों को वरने चल पड़ें अथवा एक कबीले की स्त्रियाँ कबीले को छोड़ दूसरे कबीले के पुरुषों को वरने चल पड़ें। उस समय पहला कबीला उभयलिंगी न रहकर एक लिंगी रह जायेगा।

यह जाति-परिवर्तन का प्रमाण नहीं है।

कई पर्णांग में देखा गया है कि उनकी पुरुष कोपिका (sperm) जल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में तैरती रहती है। यह भी यही सिद्ध करता है कि पर्णांग पौधे एक-कोषिका जन्तु हैं। इनमें स्त्री-कोषिका और पुरुष कोषिका पृथक्-पृथक् होती है। ये प्रायः समूह(colonies)बनाकर रहते हैं। कभी समूह में से पुरुष निकलकर भटक सकते हैं। पीछे स्त्री कोषिकायें ही रह जाती हैं और पुरुष कोषिकायें जल में तैरती रहती हैं। इस घटना का सम्बन्ध जाति परिवर्तन से कैसे जोड़ा जा सकता है? यह समझ में न आ सकने वाली बात है।

पर्णांग पौधों में ऐसी कोई बात प्रतीत नहीं होती जिससे यह कहा जा सके कि जन्तु-जाति परिवर्तन सिद्धान्त रूप में सिद्ध हो गया।

यह प्रक्रिया कुछ एक फूलों में भी देखी जाती है। वन फूलों में 'पोलन' (पराग) हवा में उड़कर दूसरे फूलों के स्त्री अंग में संयोग के लिये जाते हैं। यद्यपि उस फूल में भी स्त्री अंग होता है जिसका पराग हवा में उड़ गया होता है और किसी दूसरे फूल में बीजारोपण करने में योग्य हो जाता है।

पर्णांग में पुरुष कण (sperm) जल से बहकर किसी अन्यत्र स्थान पर नये पौधे का बीजारोपण करने जाता है।

दोनों अवस्थाओं में, फूल के पराग की अवस्था में और पर्णांग के पुरुष कण की अवस्था में किसी नयी जाति का निर्माण नहीं हो रहा होता।

(६) एक ही जन्तु-जाति में भिन्न-भिन्न रूप-रंग होना (polymorphism) भी जाति परिवर्तन का प्रमाण नहीं।

उदाहरण के रूप में कुत्तों की अनेक जातियाँ हैं। छोटी-बड़ी भिन्न-भिन्न प्रकार के रंग-रूप रखने वाली बहुत-सी जातियाँ हैं। इस पर भी वे सब कुत्ते हैं। उनमें परस्पर सन्तान हो सकती है। इस कारण वे एक जन्तु-जाति के हैं।

भिन्न-भिन्न रूप रंग होने से वे जाति परिवर्तन का संकेत नहीं करते। एक नीग्रो एक अंग्रेज से भिन्न जाति का नहीं है।

(७) डार्विनवाद का नया रूप (neo Darwinism) का अर्थ ही यह है कि कुछ वैज्ञानिकों को डार्विन की जाति-परिवर्तन(change of species) की विवेचना सन्तुष्ट नहीं कर सकी। इसी कारण उन्होंने उसको सिद्ध करने के लिये कुछ नयी बातें और नयी प्रक्रिया का वर्णन किया है। उसका नाम डार्विनवाद का नया स्वरूप (new-Darwinism) है।

हमारा विचार है कि उनके प्रयत्न अभी तक कुछ भी सिद्ध नहीं कर सके।

इस डार्विनवाद की नयी विवेचना में भी जो बात नहीं हो सकी और जिसका होना अत्यवश्यक था, वह था किसी प्रकार का संकेत कि प्रकृति में नवीन जाति निर्माण की प्रवृत्ति है। देखने में तो यह आया है कि प्रकृति में नवीन जाति-निर्माण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रवृत्ति नहीं है। विपरीत इसके, किसी घटनावश कुछ नवीन बनता दिखायी देता है तो प्रकृति अपनी भूल को सुधार पुनः स्वाभाविक जाति प्रवहन में आ जाती है।

नवीन डार्विन वाद के प्रचार करने वालों ने कोई नया प्रमाण प्रस्तुत नहीं किया। उन्होंने भूगर्भशास्त्रियों तथा श्री मण्डल द्वारा नयी बातों को लेकर डार्विन वाद को सिद्ध करने का यत्न किया है।

इस विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ इतना समझ लेना चाहिये कि भूगर्भशास्त्रियों की कल्पना डार्विन के विकासवाद को सत्य मानकर बनी है और नवीन डार्विन वाद वाले भूगर्भशास्त्रियों के कथन को आधार बना विकासवाद को सिद्ध करना चाहते हैं। इस प्रकार अन्योन्याश्रित होने से दोनों ही असिद्ध हैं।

(८) भूगर्भशास्त्रियों का एक कथन हम नीचे देते हैं। उनका कहना है—

A major part of the legible history of the earth is read from sedimentary rocks, which record an order of events, changing environments, developments in animal and plant life and effects of crustal movements.

Ibid. Vol. 10. p. 173

इसका अर्थ है कि परतों में बैठी हुई चट्टानों से पृथिवी का जाना जा सकने योग्य इतिहास का मुख्य अंग पढ़ा जा सकता है। पृथिवी पर बदलती हुई परिस्थितियों का पता चल सकता है और उन कालों में जन्तु तथा वनस्पति जीवन का ज्ञान प्राप्त होता है।

हम यह बता चुके हैं कि पृथिवी की परतों के नीचे दबी हुई वस्तुओं को देखकर उनकी प्राचीनता और नवीनता का ज्ञान हो सकता है।

परन्तु इस ज्ञान की श्रेष्ठता और सत्यता तो इस बात पर निर्भर करती है कि भिन्न-भिन्न स्थान की समान परतें एक ही समय की परिस्थिति में बनी हों। इसी बात में सन्देह है। आईसलैण्ड में पत्थर के टुकड़ों की तह यह बताती है कि वहाँ बर्फ़ का तूफ़ान कभी आया था, परन्तु हरिद्वार के समीप के पास पत्थर की तह (gravel strata) बर्फ के तूफान का प्रतीक नहीं, वरन् गंगा में बाढ़ का प्रतीक हो सकता है। साथ ही दोनों परतें (strata) एक ही काल की हैं, कहा नहीं जा सकता। तब आईसलैण्ड के 'ग्रैवल', पत्थरों की तह में दबी कोई वस्तु उस काल की नहीं हो सकती जो गंगा के किनारे पर पत्थरों की परत में दबी वस्तु होगी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साथ ही एक स्थान की एक प्रकार की परत एक समय में हुई और दूसरे स्थान पर वैसी ही परत उसके पहले अथवा पीछे हो सकती है। ऐसा समझने में कारण यह है कि पृथिवी पर सब स्थान पर एक समान परिस्थिति एक ही समय में नहीं रही।

यही कारण है कि एक भूगर्भशास्त्री का अनुमान प्रायः दूसरे भूगर्भशास्त्री के कथन से भिन्न है। उदाहरण के रूप में पुस्तक 'The Age of the Earth' के प्रथम पृष्ठ पर ही लिखा है—

The geological periods is difficult to establish with certainty.

(भूगर्भ शास्त्र के युगों का निश्चय करना अत्यन्त कठिन है।)

यदि ऐसा है तो इससे लिखित इतिहास अथवा दूसरी प्रकार से जाने इतिहास के खण्डन की क्या आवश्यकता है ?

ऐन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका में भूगर्भशास्त्रानुसार युगों की आयु इस प्रकार लिखी है—

1. Pre-cambrian age—(4,000,000 to 620,000 years before now.) Found plants and animals with soft tissues.

2. Paleozoic age—(500,000 to 230,000 years before now.)
   (a) Ordovician Cambran—(500, 000 to 400,000) years before now. (Found first primitive fishes, large faunas of marine invertebrates.)
   (b) Silurian—(350,000 to 320,000 years before now.) Earliest land plants and animals.
   (c) Carboniferous—(320:000 to 260,000 years before now.)
   First reptiles.
   (d) Permian—(235,000 to 230,000 years before now) conifers abundant reptiles developed.

3. Mesozoic Age—(200,000 to 130,000 years before now.)
   (a) Triassic—(200,000 years before now.)
   (Appearance of dinosaurs)
   (b) Jurassic—(160,000 years before now)
   Primitive birds, first small mammals.
   (c) Cretaceous—(130,000 years before now.)
   Extinction of dinosaurs, floras with modern aspects.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

4. Cenozoic Age—(70,000 to present age.)

(a) Tertiary (70,000 to 21,000 years before now.)
First placental mammals, rise of flowering plants, large browsing mammals, whales, apes, grazing forms, large carnivores.

(b) Quarternary—(21,000 to now.)
Early man to modern man. Ibid. Vol. 10, p. 175)

...The waxing, waning and shifting of volcanic belts; and above all the miracle of evolving in seas and on lands, leading to modern floras and fauna and the rise of man. Relative dates through a vast lapse of time are clearly indicated in the stratigraphic record and reliable absolute dates are becoming available from geochemical studies of critical isotopes.
(Ibid. Page 173)

इसका अर्थ है—पिघल रहे, विलीन हो रहे और स्थान बदल रहे ज्वालामुखियों की पट्टियों से और इससे भी अधिक चमत्कारिक घटना, समुद्र और स्थल पर, जीवन का आविर्भाव और वर्तमान वनस्पतियों और प्राणियों के मनुष्य तक पहुँचने से (पृथिवी के इतिहास का ज्ञान होता है।) इस विशाल व्यतीत काल से तुलनात्मक तिथियों का स्पष्ट संकेत 'स्ट्रेटोग्राफ़िक' लेखों में लिखा मिलता है और इससे भी विश्वस्त एवं ठीक तिथियाँ, भूमि में उपस्थित आईसोटोप्स के अध्ययन से मिलने लगी हैं।

यह कथन वस्तुस्थिति के सर्वथा विपरीत है। बात यह है कि पृथिवी तल पर ये घटनायें तो हुई हैं, परन्तु इनकी तिथियां सर्वथा भ्रामक हैं।

हास्यस्पद बात यह है कि इन (stretographic) तिथियों का क्रम सिद्ध करने के लिये विकासवाद (evolution theory)) का आश्रय लिया गया है और विकासवाद को सिद्ध करने के लिये (stretographic) तिथियों का आश्रय लिया गया है।

विकासवाद सर्वथा काल्पनिक और असिद्ध विचार है और (stretographic) तिथियां भी भ्रामक हैं।

'स्ट्रेटोग्राफ़िक' का अर्थ है चट्टानों में पड़ी परतों (layers of sediments) को देख और गिनकर उनकी आयु का अनुमान लगाना।

मान लें कि एक स्थान पर एक 'सैडिमैण्टरी' चट्टान की परत दस फुट गहरी है और किसी अन्य स्थान पर भी यह दस फुट है तो दोनों परतों के बनने में समान काल का अनुमान लगा लिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह अनुमान अयुक्त है। कारण यह कि किसी स्थान पर चट्टान की परत बैठने में कई अन्य कारण भी हो सकते हैं। यदि एक नदी में एक बार बाढ़ आने पर मिट्टी की $\frac{1}{2}$" परत बनती है तो वहाँ दस फुट मोटी परत बनने में ढाई सौ वर्ष का अनुमान ठीक नहीं भी हो सकता। कारण यह कि नदी में बाढ़ प्रति वर्ष नहीं आती। फिर सब समय एक समान नहीं आती। यह भी सम्भव है कि एक नदी में दस वर्ष में एक बार बाढ़ आयी और किसी दूसरी नदी में प्रति वर्ष आती है। अतः मिट्टी अथवा चट्टानों की परतों से किसी प्रकार सत्य काल का अनुमान लगाना ग़लत ढंग है।

यही बात ज्वालामुखियों से निकलने वाले लावा, राख, पत्थर इत्यादि की परतों की है। यह निश्चय नहीं कि सब स्थान पर के ज्वालामुखी नियम से फटते रहे होंगे। न ही यह कहा जा सकता है कि कोई एक ज्वालामुखी नियम से नियत काल के उपरान्त ही लावा, राख इत्यादि बाहर फेंकता रहा है।

यह 'स्ट्रेटोग्राफ़िक रिकार्ड' जिससे पृथिवी पर परतों के बन जाने से अनुमान लगाया जाता है किसी प्रकार भी निश्चित और स्पष्ट आँकड़े नहीं दे सकता।

इससे यह तो पता चल सकता है कि अमुक स्थान पर कभी कोई ज्वालामुखी रहा है, सागर रहा है, अथवा मरुभूमि रही है। परन्तु यह कितने वर्ष आज से पहले रही है, कहना प्रायः ग़लत होगा। अधिक से अधिक यह पता चल सकता है कि सागर के स्थान पर कभी ज्वालामुखी रहा है अथवा मरुभूमि के स्थान पर सागर रहा है। अथवा किसी स्थान पर कोई नदी बहती रही है, परन्तु यह कहना कि यह कब थी, किससे पहले थी और किससे पीछे थी, कल्पना की दौड़ है जो ठीक होनी सम्भव नहीं।

अतः हमारा यह विचारित मत है कि पृथिवी पर घटी घटनाओं का लेखा-जोखा लगाने के लिये 'स्ट्रेटोग्राफ़िक रिकार्ड' विश्वास योग्य नहीं।

जो खोपड़ियाँ और हड्डियाँ चट्टानों और पृथिवी परतों में मिली हैं, उनसे यह तो सिद्ध हो गया कि उस परत बनने के समय उसके काल वाला जन्तु मरा है और परत में दब गया है, परन्तु वह जन्तु आजकल के किसी जन्तु का पूर्वज था, यह सिद्ध नहीं होता।

इस विषय में डाक्टर ऐगासिज़ का विचार हम पूर्व में बता आये हैं।

अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि जब मछलियाँ थीं तब स्तन-पेयी नहीं थे। परन्तु स्तन-पेयी मछलियों से बदलकर बने हैं, यह इससे न तो सिद्ध होता है और न ही लक्षणों से ऐसा प्रतीत होता है। मछली की कोषिका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में जीन की संख्या वह नहीं जो मनुष्य की कोषिका में है। साथ ही बाहरी प्रकृति के प्रभाव से जीनों के क्रम और संख्या में परिवर्तन होता है, यह अभी तक नहीं देखा गया।

आस्ट्रेलिया के रेगिस्तानों में किसी जन्तु की खोपड़ी मिली है। यह अनुमान लगाया गया है कि वह आज से पचास-साठ हज़ार वर्ष पूर्व की है। परन्तु वह जन्तु वर्तमान मनुष्य का पूर्वज था, सिद्ध नहीं हुआ।

पूर्वोक्त भूगर्भशास्त्रियों के वक्तव्य में कहा गया है कि 'स्ट्रेटोग्राफ़िक रिकार्ड' से अधिक विश्वसनीय आइसोटोप्स की काल-गणना है। अतः यहाँ हम आइसोटोप्स के अर्थ समझा देना चाहते हैं।

जब किसी रासायनिक गुणों से एक समान पदार्थ में दो अथवा अधिक द्रव्यमान (mass) वाले ऐटम मिलें तो ऐटम 'आइसोटोप्स' (isotopes) कहलाते हैं।

एक ऐटम का द्रव्यमान तो ऐटम में उपस्थित न्यूट्रोन neutron की संख्या पर निर्भर करता है, परन्तु उसके रासायनिक गुण (chemical properties) उसमें के इलैक्ट्रोन (electron) की संख्या और स्थिति के अनुसार होते हैं।

ऐसा भी कभी होता देखा गया है कि "इलैक्ट्रोन" की समान संख्या और स्थिति रखने वाले ऐटमों में भिन्न-भिन्न द्रव्यमान वाले ऐटम होते हैं। ऐसे ऐटम आइसोटोप्स कहलाते हैं।

इसका एक उदाहरण 'कार्बन' (carbon) है। सामान्य कार्बन के ऐटम का द्रव्यमान (mass) १२ है। अर्थात् कार्बन का ऐटम हाईड्रोजन के ऐटम से १२ गुणा अधिक न्यूट्रोन रखता है।

परन्तु कार्बन में एक अन्य प्रकार का ऐटम देखा गया है। उसका द्रव्यमान १४ है। यद्यपि उसके रासायनिक गुण वही होते हैं जो C^{12} के होते हैं।

C^{14} के ऐटम टिकाऊ (stable) नहीं हैं। ये टूटते रहते हैं। टूटकर ये C^{12} में परिवर्तित होते रहते हैं। C^{14} के ऐटम समूह में से न्यूट्रोन बाहर फेंके जाते हैं। इन न्यूट्रोन की गणना की जा सकती है।

C^{14} के सब ऐटम एकदम विखण्डित नहीं होते। ऐटम समूह (cluster of atoms) में से एक समय में पूर्ण समूह में C^{14} की संख्या के निश्चित अनुपात में ही ये विखण्डित होते हैं और विखण्डित होने वाले ऐटम की संख्या का अनुमान बाहर फेंके जाने वाले न्यूट्रोन से लगाया जा सकता है। यह संख्या नापने के लिये एक यन्त्र बनाया गया है।

ज्यों-ज्यों C^{14} ऐटम की संख्या कम होती जाती है, बाहर फेंके जाने वाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न्यूट्रोन की संख्या कम होती जाती है। जब C^{14} की पूरी संख्या होती है तो न्यूट्रोन का यन्त्र पर संकेत (decay indcx) १५.३ (+) (—) .०१ है।

इसका अर्थ है कि उस पदार्थ में जिसमें C^{12} और C^{14} का स्वाभाविक अनुपात होगा उसमें से न्यूट्रोन के बाहर फेंकने का संकेत चिह्न १५.३ (+) (—) .०१ होगा। तदनन्तर ज्यों-ज्यों C^{14} ऐटमों की संख्या कम होती जायेगी, यन्त्र पर संकेत (index) कम होता जायेगा।

जब संकेत आधा रह जाये तब विघटित होने वाले पदार्थ की आधी आयु (half life) मानी जाती है। अभिप्राय यह है कि यदि किसी पदार्थ में कार्बन विघटन का संकेत (decay index) ७.६ (+) (—).०१ हो जाये तो यह माना जाता है कि उस पदार्थ में C^{12} के ऐटमों की संख्या आधी रह गयी है।

C^{14} और C^{12} का पूरा अनुपात कब और क्यों होता है? इस विषय में एक कल्पना की गयी है।

C^{14} के बनने का एक स्रोत पता किया गया है। वायुमण्डल में कार्बनडाई-आक्साईड CO_2 के रूप में उपस्थित रहती है। CO_2 कार्बन डाइआक्साईड में C^{14} भी होती है और C^{12} भी। CO_2 तो प्राणियों के साँस लेने पर शरीर में बनती है और वायुमडण्ल में फेंकी जाती है। प्राणियों में कार्बन के पदार्थ वनस्पतियों के खाने से शरीर में आते हैं। पेड़-पौधों में कार्बन, वायुमण्डल में कार्बन, जल तथा ऑक्सीजन सूर्य की रश्मियों के प्रभाव से मिलते हैं और कार्बो-हाईड्रेट बनाते हैं। इन्हें प्राणी खाता है और CO_2 बनाकर साँस द्वारा बाहर फेंकता है।

C^{14} वायुमण्डल की नाईट्रोजन पर कौस्मिक रश्मियों के प्रभाव से बनती है। नाईट्रोजन के ऐटम का द्रव्यमान C^{14} है। कास्मिक किरणों से इलैक्ट्रान की संख्या और क्रम बदलने से N^{14} से C^{14} बन जाती है।

नित्य N^{14} से C^{14} बन रही है और नित्य C^{14} विघटित होती हुई C^{12} बन रही है। इससे एक सन्तुलन (equilibrium) C^{14} तथा C^{12} का स्थिर हो जाता है।

यह कहा जाता है कि N^{14} से C^{14} तब से बन रही है जब से पृथिवी पर वायुमण्डल बना है। और तब से ही C^{14} से C^{12} बन रही है। अतः एक ऐसा सन्तुलन बन गया है जिसमें C^{14} और C^{12} का निश्चित अनुपात हो गया है।

इसी अनुपात में CO_2 में C^{14} और C^{12} होते हैं और इसी अनुपात में पेड़ों-पौधों में ये दोनों कार्बन होती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सन्तुलित अवस्था में C^{14} का विघटन संकेत (decay index) है १५.३ (+) (−) .०१।

जब तक कोई प्राणी अथवा कोई पेड़-पौधा वायुमण्डल से CO_2 लेता रहता है, तब तक प्राणी और पेड़-पौधों में C^{12} तथा C^{14} का 'decay index' (विघटन संकेत) १५.३ (+) (−).०१ बना रहता है। परन्तु जब पेड़ से लकड़ी कट जाती है तो उस लकड़ी में वायुमण्डल की CO_2 नहीं ली जा सकती। परन्तु C^{14} तो विघटित होती रहती है। अतः कटे पेड़ की लकड़ी में C^{14} और C^{12} का परस्पर सन्तुलन (decay index) बिगड़ने लगता है और विघटन संकेत कम होने लगता है।

यह नापा गया है कि C^{14} की आधी आयु अर्थात् वह काल जिसमें आधे ऐटम C^{14} के विघटित हो जायेंगे—५५६८ (+) (−) ३० वर्ष है। यहाँ और ऊपर कई स्थानों पर (+) (−) का चिह्न बनाया गया है। इसका अर्थ है कि गणना में भूल हो सकती है। या तो (+) (−) के आगे लिखा काल कम हो सकता है अथवा अधिक। ५५६८ (+) (−) ३० का अभिप्राय है कि गणना C^{14} के परमाणु समूह आधे विघटित होंगे ५५६८ वर्ष में और ५५६८ की अवधि ३० वर्ष अधिक हो सकती है अथवा ३० वर्ष कम।

इस प्रकार पुरानी वस्तुओं की आयु पता की जा सकती है, जिनमें कार्बन का कोई पदार्थ लगा हुआ हो।

उदाहरण के रूप में इन्द्रप्रस्थ के खण्डहारों में लगे एक लकड़ी के टुकड़े में C^{14} का विघटन संकेत (decay index) देखा गया है और पता चला है कि यह लकड़ी का टुकड़ा १५०० वर्ष पूर्व पेड़ से काटा गया था।

इसी प्रकार कुछ चट्टानों के ऐटम हैं जो कार्बन C^{14} की भाँति विघटित होते रहते हैं। उदाहरण के रूप में युरेनियम (uranium) विघटित होकर सीसा (lead) बनता है। रुबीडियम (rubedium) विघटित होकर स्ट्रौंशियम (strontium) बनता है और पोटाशियम (potassium) विघटित होकर अर्गन (argon) बनता है।

प्रत्येक की आधी-आधी आयु देखी गयी है और विघटन संकेत (decay index) पता किया गया है। इससे यह पता किया जा सकता है कि उस चट्टान में युरेनियम, रुबीडियम अथवा पौटाशियम का टुकड़ा कब से है।

यह सब सायंस (science) है। गणना और यन्त्र जो गणना करते हैं वे सर्वथा ठीक भी हों तो भी उस गणना में सदा कुछ आधार रहता है। यदि वह आधार ही मिथ्या अथवा भूल से स्वीकार किया गया हो तो सब गणना और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणाम गलत हो जायेगा।

हम चट्टानों में विघटनकारी ऐटम की कहानी एक वैज्ञानिक के मुख से यहाँ लिख देना चाहते हैं।

ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय के एक प्राध्यापक का वक्तव्य जो उसने एक पत्र-प्रतिनिधि को दिया था, हम नीचे देते हैं। इस वक्तव्य देने के उपरान्त हम इसमें भूल के स्रोत का वर्णन करेंगे।

वक्तव्य इस प्रकार है—

पत्र प्रतिनिधि जिसने ऑक्सफ़ोर्ड के डाक्टर मूरबथ (Dr. Moorbath) से वार्तालाप किया था, मिस्टर ऐडवर्ड ऐश पोल (Edward Ashpole) थे। डा० मूरबथ ऑक्सफ़ोर्ड विश्वविद्यालय में भूगर्भ शास्त्र तथा खनिज पदार्थ विद्या (geology and minerology) के प्राध्यापक हैं।

भेंट विश्वविद्यालय के भूगर्भ शास्त्र विभाग के एक कमरे में हुई। डाक्टर ने कुछ पत्थर के टुकड़े दिखाये। डाक्टर ने और उसके साथ काम करने वाले डाक्टर नोअल गेल (Dr. Noelgale) और डाक्टर राबर्ट पैंकहर्स्ट (Dr. R. Pankhursts) ने उन पत्थर के टुकड़ों की आयु पता की है। यह ३,९८,००,००,००० (तीन अरब, अट्ठानवें करोड) वर्ष पता चली है।

डाक्टर साहब ने बताया कि इस शताब्दी के आरम्भ में पृथिवी की आयु १०,००,००० (दस लाख) वर्ष मानी जाती थी, परन्तु आज ऐटम के विघटन के ज्ञान से नये अनुमान लगाये गये हैं। डाक्टर ने यह दावे से कहा :—

Yes, definitey all the evidences show that the duration is 4,60,00,00,000 years old. The last major steps measuring the age of the earth were in early 1950, when it became possible to measure uranium—lead, rubedium—strontium, potassium—argon ratio in meteorites.

(Qtd. from 'Motherland' Daily, Delhi Sunday 7-5-1972)

इसका अर्थ है—

डाक्टर मूरबथ ने कहा, 'निश्चय से ऐसे प्रमाण मिल गये हैं कि पृथिवी की आयु चार अरब साठ करोड़ वर्ष है। यह गणना सन् १९५० के दशक के आरम्भ में की जा सकी थी, जब यह सम्भव हो गया कि युरेनियम से सीसा, रुबीडियम से स्ट्रोंशियम और पोटाशियम से आर्गन की मात्रा मीटियोराइट में मापी जा सके।

मीटियोराइट (meteorite) का अर्थ है टूटने वाले तारों के टुकड़े जो पृथिवी पर आकर गिरे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने ऊपर बताया है कि कुछ रासायनिक तत्त्वों के ऐटम टूट-टूटकर छोटे ऐटम बनते रहते हैं। ऊपर कार्बन C^{14} से C^{12} का बनना बताया गया है। इसी प्रकार युरेनियम विघटित होकर सीसा (lead) बनता है। रुबीडियम विघटित होकर स्ट्रौंशियम बनता है और पोटाशियम विघटित होकर आर्गन बनता है।

ये विघटन बहुत धीरे-धीरे होते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि एक ग्राम युरेनियम बदलकर आधा ग्राम रह जायेगा। यह काल जब पता चल गया तो किसी पत्थर में युरेनियम और सीसा साथ-साथ होने पर उनकी मात्रा में अनुपात से पत्थर के टुकड़े की आयु का ज्ञान हो सकता है।

इसी प्रकार किसी पत्थर में रुबीडियम और स्ट्रौंशियम साथ-साथ होने पर अथवा पोटाशियम और आर्गन के साथ-साथ होने पर दोनों की मात्रा में अनुपात से पत्थर के टुकड़े की आयु पता चल जाती है।

पत्रकार लिखता है—

Dr. Moorbath and his colleagues Dr. Noel Gale and Dr. Robbert Pankhursts have dated these rocks 3,980 million years with an error of 11,00,00,000 years either way. (Ibid.)

अर्थ है—डाक्टर मूरबथ और उसके साथी डाक्टर नोयल गेल और डाक्टर राबर्ट पैंकहर्स्टस ने इन पत्थरों की आयु ३,९८० मिलियन (तीन अरब अट्ठानवे करोड़) वर्ष बताई है। इसमें गलती ग्यारह करोड़ वर्ष की अधिक अथवा कम हो सकती है।

उक्त दोनों उदाहरणों C^{14} से C^{12} बनने की और पत्थर के टुकड़ों में युरेनियम, सीसा इत्यादि बनने की काल गणना में भूल यह प्रतीत होती है कि वे पत्थर के टुकड़े जो पृथिवी पर गिरे, पृथिवी के साथ ही बने थे अथवा आगे-पीछे बने।

दूसरी भूल इस गणना में यह हो सकती है कि नैब्युला (हिरण्य-गर्भ) में तापक्रम (temperature) बहुत अधिक था और साथ ही उसमें युरेनियम इत्यादि मूल प्रकृति के परमाणुओं से बने थे। इस कारण उस काल में और जब तक वे पत्थर के टुकड़े जमकर ठोस नहीं हो गये और उनका तापक्रम पृथिवी के समान नहीं हो गया, तब तक विघटन संकेत (decay index) यही रहा होगा जो अब है, कहना गलत होगा।

एक तो नैब्युला (Nebula) की अवस्था में मूल प्रकृति के परमाणुओं में संयोग हुआ और भिन्न-भिन्न पदार्थ बने। वे सब क्या पत्थर से केवल यूरेनियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही बने और पत्थर के बनने के समय सीसा की कुछ भी मात्रा नहीं थी, कहा नहीं जा सकता।

नैब्युला में केवल गर्मी ही अधिक नहीं थी, वरन् अन्य विद्युत इत्यादि शक्तियाँ भी निर्माण और विघटन-कार्य कर रही थीं।

यह मान लेना कि उस पत्थर के टुकड़े में जिसमें युरेनियम इत्यादि की मात्रा पता की गयी है, केवल यूरेनियम, रुबीडियम और पोटाशियम ही थे, सप्रमाण नहीं है।

यह मिथ्या आधार है।

इसी प्रकार C^{11} और C^{12} का वायुमण्डल में और हरे पेड़ों में जो सन्तुलन स्वीकार किया गया है, वह वही था जो आज कुछ सहस्र वर्ष व्यतीत होने पर है, कहा नहीं जा सकता।

आजसे दस-बीस सहस्र वर्ष पूर्व C^{14} तथा ^{12} का सन्तुलन (equilibrium) वही था जो आज है, गलत है। यह हम ही नहीं कहते। इस विषय में कई वैज्ञानिकों ने भी सन्देह प्रकट किया है। शिकागो विश्वविद्यालय के डाक्टर विलफ़ोर्ड एफ० लिब्बी ने अपनी पुस्तक 'Radio Carbon-Dating—Chicago' के पृष्ठ ७ और ८ पर C^{14} तथा C^{12} में सन्तुलन पर विवेचना की है और डाक्टर लिब्बी (Libby) का कहना है कि यह सन्तुलन (equilibrium) गलत प्रसारित किया गया है।

इसी प्रकार Dr. Richard Edongenfeltev ने अपने लेख 'Revival of Geophysics नाम के जर्नल Vol. I. No 1 फरवरी सन् १९६३ के पृष्ठ ५१ पर लिखा है—

That there is strong indication despite the large errors, that the present natural production rate exceeds the natural decay rate by as much as 25%...It appears that equilibrium in the production and decay of carbon—14 may not be maintained in detail.

उक्त जर्नल में डाक्टर लिन्गन फ़ेल्टर की पुस्तक 'Production of C^{14} by Cosmic Rays' की समालोचना प्रकाशित हुई थी। अन्य भी कई वैज्ञानिकों ने C^{14} C^{12} के सन्तुलन में भूल मानी है और इससे 'Carbon Dating' के सब अनुमान गलत सिद्ध हो जाते हैं।

परन्तु हमारी एक अन्य आपत्ति भी है। वह ऐतिहासिक है। इस कार्बन गणना से हस्तिनापुर से मिली एक लड़की की तिथि १५०० वर्ष आज से पूर्व आंकी गयी है। हस्तिनापुर महाभारत के काल में और पीछे कई हज़ार वर्ष तक फलता-फूलता हुआ नगर रहा है। उन हज़ारों वर्षों में वह लकड़ी का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टुकड़ा जिसमें कार्बन-१४ और -१२ का अनुपात पता किया गया है, कब पेड़ से काटकर इमारत में लगाया गया, विज्ञान के क्षेत्र से बाहर की बात है। इस प्रकार यह दावे के साथ कहा जा सकता है कि स्ट्रैटोग्राफ़िक तिथियों और कार्बन विघटन से तिथियों की गणना विश्वसनीय नहीं।

इसकी तुलना में भारतीय तिथि काल के निर्णय का ढंग कितना ठीक है, यह आगे चलकर लिखेंगे। इन वैज्ञानिकों का कूद कर विकासवाद के पक्ष में खड़ा हो जाना सर्वथा ग़लत है। यहाँ यही बताना हमारा उद्देश्य है।

विकासवाद जैसा डार्विन और उसके विचार वालों ने प्रतिपादित किया है, न तो अनुमान से सिद्ध है और न ही प्रत्यक्ष से। यह अभी तक भी एक वस्तु-स्थिति का काल्पनिक विचार (imaginative contemplation of a reality) ही है।

(६) डॉक्टर मण्डल और डॉक्टर खुराना की "जैनेटिक्स" के विषय में खोज अभी अधूरी है। उससे सृष्टि के आदि में कैसे जीन बने, सिद्ध नहीं हो सका। न ही यह सिद्ध किया जा सका है कि प्रकृति की बदलती अवस्थाओं में जीन पर क्या और कैसे प्रभाव पड़ता है ?

अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि मण्डल साहब ने तो यह दिखाया है कि सन्तानोत्पत्ति में दूर-दूर के नर और मदीन का संयोग अच्छी सन्तान पैदा करता है। और जीन का सम्बन्ध शरीर की लम्बाई-चौड़ाई और रूप-राशि से है।

जहाँ तक डॉक्टर खुराना की खोज का अर्थ समझ में आता है, वह यह है कि जैसे पेड़ों में प्योंद (grafting) लगायी जा सकती है, वैसे ही यह प्योंद कोषिका के भीतर जीन में भी लगाई जा सकती है, परन्तु जैसे पेड़ों में प्योंद के लगाने से यह सिद्ध नहीं होता कि नवीन जाति बन गयी है, वैसे ही जीन की संख्या में प्योंद लगाने से नवीन जाति का निर्माण हो गया नहीं माना जायेगा।

इनकी खोज अन्य दिशाओं में महत्त्वपूर्ण हो सकती है, परन्तु विकासवाद के समर्थन में इनका सहयोग प्रतीत नहीं होता। भारतीय वैज्ञानिक इस विषय में क्या समझते हैं, यह अगली कण्डिका में लिखेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बहुत बड़ा था और वहाँ कलल की मात्रा भी अधिक थी। उस पर जो झिल्ली बनी, वह माँ के पेट में बनी झिल्ली से अधिक सुदृढ़ थी। इस प्रकार एक बड़ा अण्डा बन गया और उसमें उपस्थित कलल के आश्रय युवा पुरुष और युवा स्त्री उत्पन्न हुए।

हमने संसार में भिन्न-भिन्न प्राणियों की होने वाली सन्तान को प्रत्यक्ष देख उससे मनुष्य की सृष्टि का अनुमान लगाया है।

(८) यह कहा जाता है कि यह जो कुछ हम भारतीय विज्ञान के नाम से लिख रहे हैं, वह विज्ञान (science) नहीं। यह तो कोरा तर्क है। अधिक से-अधिक इसे दर्शन शास्त्र ही (philosophy) कहा जा सकता है।

इस विषय में हमारा कहना है कि सत्य की खोज (research) में प्रत्यक्ष और अनुमान एक ही शृंखला की दो कड़ी हैं। प्रत्यक्ष से ही अनुमान लगाया जाता है। अतः दर्शन शास्त्र भी सत्य की खोज में उतना ही सहायक होता है जितना कि प्रत्यक्ष।

कभी परीक्षण प्रयोगशाला के भीतर बैठकर किया जाता है और कभी परीक्षण विश्व (universe) को प्रयोगशाला मान उसमें किये जाते हैं।

भारतीय विद्वानों ने सृष्टि-रचना के विषय में विश्व में घट रही घटनाओं को देखकर अपने परीक्षण किये और उन पर मन में विवेचना की और फिर उससे परिणाम निकाले हैं।

ज्योतिष शास्त्र भी एक उपवेद माना गया है। यह भी विज्ञान (science) है। इसके सब परीक्षण प्रयोगशाला के बाहर ही होते हैं।

यह हम बता चुके हैं कि परीक्षण करने वाला तो मनुष्य है। मनुष्य में आत्मा है। इन्द्रियाँ जो प्रत्यक्ष निरीक्षण करती हैं और मन तथा बुद्धि जो उन परीक्षणों की विवेचना का परिणाम निकालते हैं, सब जीवात्मा की सहायता करने वाले हैं।

प्रयोगशाला के यन्त्र इत्यादि तो इन्द्रियों की सहायता के लिये हैं।

कहने का अभिप्राय यह है कि निरीक्षण (observation) और उस पर विवेचना ही तो विज्ञान है। विज्ञान यन्त्र इत्यादि नहीं। यन्त्र विज्ञान की सहायता के लिये हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अध्याय

जगत् के मूल तत्व

: १ :

एक सूत्र है—

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्।। (ब्र० सू० १-२-१)

अर्थात्—सब स्थान पर प्रसिद्ध के कहे जाने से।

संसार में सब स्थान पर और सब काल में प्रसिद्ध तो यह जगत् है। हम इसे सब समय देखते, सुनते और अन्य इन्द्रियों से अनुभव करते हैं। अर्थात् यह जगत् है। इस पर प्रश्न उपस्थित होता है कि यह क्या है? कहाँ से आया है? इसका कहीं मूल भी है अथवा नहीं?

छान्दोग्य उपनिषद् में शिष्य गुरु से पूछता है—भगवन्! क्या यह सब कुछ असत् (शून्य) से उत्पन्न हुआ है?

गुरु उत्तर देता है—

कुतस्तु खलु सोम्यैवꣳ स्यादिति होवाच कथमसतः सज्जायेतेति। सत्त्वेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम्।।

(छान्दो० ६-२-२)

अर्थात्—हे सौम्य! ऐसा कैसे हो सकता है? भला, असत (शून्य) से सत् (यह दृष्य जगत्) कैसे हो सकता है? अतः हे सौम्य! आरम्भ में एक ही अद्वितीय सत् था।

अभिप्राय यह कि यह जगत् शून्य से नहीं बना। यह भारतीय वैज्ञानिकों का मत है। प्रश्न उपस्थित होता है कि वह अद्वितीय एक क्या है? यही भारतीय विज्ञान की खोज का मूल विषय है।

एक अन्य उपनिषद् है श्वेताश्वतर उपनिषद्। उसमें इस प्रश्न पर प्रकाश डाला गया है।

इस उपनिषद् के आरम्भ में लिखा है कि कुछ विद्वान् लोग एक गोष्ठी में बैठे विचार कर रहे हैं।

वहाँ लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ६ :

मनुष्य सृष्टि के विषय में भारतीय मत

(१) भारतीय मत यह है कि जब पृथिवी पर जलवायु की अनुकूल परिस्थिति बन गयी तो प्राणी-सृष्टि सूर्य रश्मियों से हुई।

वह मन्वन्तर जिसमें प्राणी-सृष्टि हुई, वैवस्वत सुत कहलाता है। अर्थात् सूर्य पुत्रों का काल।

हम यह बता चुके हैं कि भारतीय ज्योतिष शास्त्र में जगत् रचना के पूर्ण काल को ब्रह्म दिन कहते हैं। यह ४,३२,००,००,००० वर्ष का है। इस काल को १४ मन्वतरों में बाँटा गया है। इन १४ मन्वन्तरों में ६ व्यतीत हो चुके हैं। यह सातवाँ मन्वन्तर व्यतीत हो रहा है और इस सातवें मन्वन्तर का नाम है वैवस्वत सुत। इसका मस्नुमृति में इस प्रकार उल्लेख आता है—

स्वायम्भुवस्यास्य मनोः षड् वंश्या मनवोऽपरे।
सृष्टवन्तः प्रजाः स्वाः स्वा महात्मानो महौजसः॥
स्वारोचिषश्चौत्तमश्च तामसो रैवतस्तथा।
चाक्षुषश्च महातेजा विवस्वत्सुत एव च॥

(मनु० १-६१-६२)

अर्थात्—परमात्मा क पुत्र मनु के वंश में उत्पन्न महात्मा तथा पराक्रमी धन्यमान ६ मनुओं ने अपनी-अपनी प्रजाओं की सृष्टि की।

उन छः मनुओं के नाम हैं—स्वरोचिष, उत्तम, तामस, रैवत, चाक्षुष और वैवस्वत-सुत (सूर्य पुत्र)।

मन्वन्तरों के नाम उनके अपने-अपने काल में सृष्टि-रचना के कार्य के अनुसार रखे गये हैं और वर्तमान मन्वन्तर का नाम प्राणी की रचना के अनुसार रखा गया है।

(२) पहले वनस्पतियां हुई। सोम की सहायता वनस्पतियों के बीज सृष्टि पर आये। तदनन्तर इतर् जीव-जन्तु हुए। इसकी ओर संकेत भागवत् पुराण में मिलता है। वहाँ लिखा है—

ससर्जाग्रेऽन्धतामिस्रमथ तामिस्रमादिकृत्।
महामोहं च मोहं च तमश्चाज्ञानवृत्तयः॥
दृष्ट्वा पापीयसीं सृष्टिं नात्मानं बह्वमन्यत।
भगवद्ध्यानपूतेन मनसान्यां ततोऽसृजत्॥

(भा० पु० ३-१२-२,३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—सबसे पहले उन्होंने (ब्रह्मा ने) अज्ञान की वृत्ति वाले पाँच जन्तु-जातियों की श्रेणियों का सृजन किया। तम, मोह, महामोह, तामिस्र और अन्ध तामिस्र।

परन्तु इस अत्यन्त पापमयी सृष्टि को देख- देखकर उन्हें (ब्रह्मा को) प्रसन्नता नहीं हुई। तब उन्होंने भगवान् (परमात्मा) का ध्यान कर अपने मन को पवित्र कर दूसरी सृष्टि की।

यहाँ मोह इत्यादि सृष्टि से अभिप्राय उन जन्तु-जातियों से है, जिनमें मन और बुद्धि इतने मलिन हैं कि दुर्बल स्मृति और कुण्ठित विचार शक्ति के कारण अपना मार्ग स्वयं नहीं पा सकते।

(३) इतर् जीव-जन्तुओं के उपरान्त ही मनुष्य की सृष्टि हुई। इसके विषय में भागवत् पुराण में इसी प्रसंग में लिखा है—

अथाभिध्यायतः सर्ग दश पुत्राः प्रजज्ञिरे।
भगवच्छक्तियुक्तस्य लोकसन्तानहेतवः॥
मरीचिरत्र्यंगिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः।
भृगुर्वसिष्ठो दक्षश्च दशमस्तत्र नारदः॥

(भा० पु० ३-१२-२१,२२)

अर्थात—तदनन्तर भगवान् की शक्ति से सम्पन्न होकर (उन्होंने ब्रह्मा ने) मानव सृष्टि के लिये संकल्प किया और दस पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम थे मरीचि, अगित्र, अंरिा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु, वशिष्ठ, दक्ष और नारद।

इनकी सन्तान मानव-सृष्टि हुई।

(४) सब वनस्पतियां और जन्तु-जातियाँ पृथक्-पृथक् उत्पन्न हुईं। वनस्पतियाँ और इतर् जन्तु-जातियाँ सबका बीजारोपण पृथक्-पृथक् हुआ। पृथिवी पर प्राणी-शरीर बनते थे। अर्थात भूमि पहला गर्भ स्थान था। सूर्य का तेज पुरुष कण (sperm) के रूप पृथिवी पर गर्भ धारण करा कर संसेचित कोषिका (fertilized cell) बना देता था और प्राणी की उत्पत्ति होती थी।

यह ठीक वैसे ही हुआ जैसे कि आजकल प्राणी-सृष्टि होती है। स्त्री का गर्भाशय वह स्थान है जहाँ पुरुष कण (sperm) और स्त्री कण (ovum) का संयोग होकर संसेचित कोषिका बनती है। इस प्रकार पृथिवी पर भूमि में यह सम्भव हुआ। भूमि ने गर्भाशय का स्थान लिया। सूर्य की किरणों से पुरुष-तत्त्व आया और रोहिणी से स्त्रीतत्त्व प्राप्त हुआ। गर्भ स्थित हो गया।

(५) इस सबमें यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि इसका प्रमाण क्या है? यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य है कि आदि सृष्टि-रचना काल की कोई साक्षी तो है नहीं। परन्तु इसे हम अनुमान प्रमाण से ही समझ सकते हैं।

हम बता चुके हैं कि अनुमान प्रमाण प्रत्यक्ष में देखी घटनानों से ही लगाया जाता है। जैसे धुआं और अग्नि के प्रत्यक्ष सम्बन्ध को देखकर किसी परोक्ष स्थान से उठता धुआं देख अग्नि का अनुमान सत्य होता है, वैसे ही सृष्टि रचना की बात है। प्राणी सृष्टि बिना पुरुषतत्त्व और स्त्रीतत्त्व के संयोग के होती हम नहीं देखते। अतः जब भी प्राणी सृष्टि आरम्भ हुई, यह इसी प्रकार से आरम्भ हुई, मानना ही सत्य अनुमान है।

पुरुष और स्त्री में रेतस् (sperm and ovum) अन्न से ही पैदा होते हैं। अन्न में यह रेतस् बनाने की सामर्थ्य सूर्य से आती है। सूर्य में से तेज प्रसारित हो रहा है। वह अन्न में रेतस् बनाने की सामर्थ्य उत्पन्न करता है।

अतः प्रथम रेतस् (sperm and ovum) भी सूर्य रश्मियों से उत्पन्न हुआ। यह आज प्रत्यक्ष में देखे से ही अनुमान लगाया गया है।

(६) अगला प्रश्न है कि आजकल ऐसा क्यों नहीं होता? इसका उत्तर भी अनुमान प्रमाण से ही दिया जाता है। सब प्राणियों में एक वयस् में ही रेतस् उत्पन्न करने की सामर्थ्य होती है। उदाहरण के रूप में मानव पुरुष में रेतस् उत्पन्न होने लगता है जब वह कौमार्यावस्था को प्राप्त होता है। यह लगभग बारह वर्ष से पन्द्रह वर्ष की वयस् है और पुरुषों में यह सामर्थ्य सत्तर पचहत्तर वर्ष तक उपस्थित रहती है।

लड़कियों में यह सामर्थ्य बारह से पन्द्रह वर्ष की वयस् तक उत्पन्न होती है और अढ़तालीस से इक्यावन-बावन वर्ष की वयस् तक बनी रहती है।

यही बात पृथिवी की अवस्था में समझ लेनी चाहिए। पृथिवी का यौवन भी एक सीमित काल तक रहा और उस काल में ही यह गर्भ धारण करने में समर्थ हुई थी।

यह हम बता चुके हैं कि जगत् की पूर्ण आयु को १४ मन्वन्तरों में विभक्त किया है और उसमें यह सातवां मन्वंतर चल रहा है। अर्थात जगत् की आधी आयु व्यतीत हो चुकी है और मनुष्य की आयु की तुलना में पृथिवी पचास वर्ष की आयु की हो चुकी है।

शास्त्र का वचन है "यथा पिण्डे तथा ब्रह्माण्डे" अर्थात् जैसा मनुष्य के शरीर में हो रहा है, वैसा ही ब्रह्माण्ड में होता है।

दर्शनशास्त्र में भी लिखा है—

गतिसामान्यात् ॥ (ब्र० सू० १-१-१०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूर्ण जगत् में गति समान है। अभिप्राय यह कि सृष्टि की गति सर्वत्र समान है।

(७) प्रश्न उत्पन्न होता है कि आज तो मनुष्य उत्पन्न होने के समय सर्वथा निस्सहाय होता है और उसके माता-पिता उसकी रक्षा और उसका पालन-पोषण करते हैं। सृष्टि के आदि में तो माता-पिता थे नहीं। तब शिशुकाल में मनुष्य की रक्षा और पालन किसने किया होगा ?

इस विषय में यह शास्त्र का वचन है कि पशु-पक्षियों में बच्चा तब तक प्रकृति के संरक्षण में रहता है, जब तक वह अपना निर्वाह स्वयं करने के योग्य नहीं हो जाता।

पक्षियों की अवस्था में एक अण्डा बन जाता है, जिसका छिलका बाहर की जलवायु का प्रभाव संसेचित कोपिका तक होने नहीं देता। उस छिलके के भीतर भोजन रहता है जिसके आश्रय संसेचित कोपिका को भोजन मिलता है और वह पलता है।

यही बात मनुष्य के साथ आदि सृष्टि के समय हुई। जब भूमि पर संसेचित कोषिका बन गयी तब भूमि पर कलल बना, जिसने उस संसेचित कोषिका को ढाँप लिया और फिर उसके चारों ओर छिलका बन अण्डे का रूप बन गया।

यही प्रक्रिया इस समय भी स्त्री के गर्भ में होती है। गर्भाशय में स्त्री-पुरुष का रेतस् मिलता है। उस समय गर्भाशय में कीचड़ की भाँति का मल संसेचित कोपिका के चारों ओर बन जाता है और उस कलल के चारों ओर एक झिल्ली बन जाती है। यह पक्षी के अण्डे के छिलके का स्थानापन्न होती है।

स्त्री के गर्भाशय में स्थान बहुत छोटा होता है। इस कारण कलल बहुत कम बनता है। वह बने बच्चे का कुछ दिन तक ही पालन कर सकता है। तदनन्तर माँ के गर्भाशय की दीवारों में रक्तवाहिनी नाड़ियाँ उसको खुराक पहुँचाने लगती हैं।

पक्षियों के अण्डे में तो इतनी भोजन सामग्री रहती है कि पक्षी का बच्चा जब पलकर अण्डे से बाहर निकलता है तब अपना जीवन चलाने के योग्य हो जाता है। स्त्री का पेट इतना बड़ा नहीं होता कि उसका बच्चा वहां बने कलल पर पलकर इतना बड़ा हो जाये कि मां के पेट से निकलते ही वह अपना जीवन चलाने के योग्य हो सके।

अतएव इस समय तो प्रकृति यह करती है कि माँ के शरीर से ही उसे माँ के रक्त द्वारा भोजन मिलने लगता है।

परन्तु यह प्रतीत होता है कि भूमि पर जो गर्भाशय बना, वह माँ के पेट से

CC-0.In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हरि ओ३म् ब्रह्मवादिनो वदन्ति ।
किं कारणं ब्रह्मः कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व चं संप्रतिष्ठाः ।
अधिष्ठिताः केन सुखेतरेषु वर्त्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थान् ।।

ब्रह्मवेत्ता लोग कहते हैं—

जगत् का कारण क्या ब्रह्म है ? हम कहाँ से उत्पन्न हुए हैं ? किससे जीवित रहते हैं ? हम कहाँ प्रतिष्ठित हैं अर्थात ठहरे हुए हैं ? किसकी व्यवस्था से बंधे हुए हैं और सुख-दुःख का भोग करते हैं ?

भारतीय और आधुनिक विज्ञान में मूल अन्तर यही है । भारतीय वैज्ञानिक यह जानना चाहते हैं कि क्या यह जगत् शून्य से बना है अथवा किसी पदार्थ से बना है ? वे इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि यह शून्य से नहीं बना, प्रत्युत एक मूल पदार्थ है । सम्पूर्ण जगत् उस मूल पदार्थ से बना है ।

वर्तमान विज्ञान जगत् के कृत्रिम पदार्थों की ओर ही ध्यान दे रहा है । वह इस बात को जानने में रुचि नहीं रखता कि इसका कोई मूल है अथवा नहीं ।

आजकल के वैज्ञानिक एक पदार्थ मानते हैं । ये उसको "anti-matter" कहते हैं । इसके विषय में इस प्रकार लिखा है—

An atom of ordinary matter is composed of a nucleus of positively charged protons and uncharged neutrons that is surrounded by a cloud of orbiting, negatively charged electrons. In 1928, the existence of an elementary particle equal in mass to the electron, but bearing a positive electric charge was foreseen by P. A. M. Dirac...This particle called a positron, was discovered by C. D. Anderson in 1932. In 1955 Emilio Segre, Owen Chamberlain and their co-workers at the University of California discovered the antiproton, an elementary particle having the same mass as the proton but carrying a negative charge. In 1956 these men and others at the University of California confirmed the existence of the antineutron, a particle identical to the neutron except that its magnetic properties are reversed in sign...

...However, if an atom of antimatter were to collide with an atom of ordinary matter, the two would immediately undergo mutual and complete annihilation with mesons and other unstable particles being created. Within a fraction of a second, all of these unstable particles would be spontaneously transformed in-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

to radiant energy—gamma rays...and stable, massless particles called neutrinos...

(Ency. Brit. Ed. 1967, Vol. 2, Page 69-C.)

इसका अर्थ यह है कि सामान्य द्रव्य के एक ऐटम के केन्द्र में प्रोटोन कण, जिन पर धन (+) विद्युत होती है और न्यूट्रोन कण जिनपर शून्य (०) विद्युत होती है और इनके चारों ओर घूमते हुए ऋण (—) विद्युत वाले इलैक्ट्रोन कणों का बादल-सा होता है। सन १९२८ में पी० ए० एम० डिरक द्वारा एक प्रारम्भिक कण की सम्भावना अनुभव की गयी, जिसका द्रव्यमान इलैक्ट्रोन बराबर है और जिस पर नध (+) विद्युत है।...यह कण जिसे प्रोटोन कहा गया है, सी० डी० ऐण्ड्रसन ने सन् १९३२ में पता किया...सन् १९५५ में इमीलियो सेग्रे, ओवन चैम्बरलैन और उनके साथियों ने कैलिफ़ोर्निया विश्वविद्यालय में एक प्रारम्भिक कण ऐण्टि-प्रोटीन पता किया, जिसका द्रव्यमान प्रोटोन के समान है, परन्तु जो ऋण (—) विद्युत रखता है। सन् १९५६ में केलिफोर्निया विश्वविद्यालय के इन्हीं वैज्ञानिकों ने इस बात का समर्थन किया कि एक प्रारम्भिक कण है जो ऐण्टि न्यूट्रोन है, जिसका द्रव्यमान वही है, परन्तु चुम्बकीय चिह्न उलटा है।...

यह देखा मया है कि जब "ऐण्टि मैटर" (उल्टे द्रव्य) का ऐटम द्रव्य के ऐटम से टकरा जाए तो दोनों एक दूसरे को तुरन्त विनष्ट कर देते हैं। उनसे मीसोन और अन्य न-टिकाऊ (unstable) कण बन जाते हैं और एक सैकिण्ड के एक अंश में ही सब न-टिकाऊ कण स्वयमेव प्रकाशमान शक्ति में जिसे गामा (γ) किरणें कहते हैं, में बदल जाते हैं और टिकाऊ (stable) द्रव्यमान हीन कण जिनको न्यूट्रिनोस का नाम दिया है, उत्पन्न हो जाते हैं।

वर्तमान वैज्ञानिकों के जगत् के मूल की खोज की अभी तक यह सीमा है। यदि भारतीय विज्ञान से इनके ज्ञान की तुलना की जाए तो हम कह सकते हैं कि इनको अभी धुंधला-सा आभास उस मूल पदार्थ का मिला है जिसे भारतीय वैज्ञानिक आज से लाखों वर्ष पूर्व मानते थे। भारतीय विज्ञान कहता है—

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम्॥ (ब्र० सू० २-२-११

महत् से दीर्घ और ह्रस्ववत् (कण) और उनसे परिमण्डल बनते हैं। ह्रस्व और दीर्घ वे कण हैं, जिनको द्रव्य (matter) कण और विपरीत द्रव्य (anti-matter) कण (particles) कहा गया है। परन्तु भारतीय वैज्ञानिक इनको प्रारम्भिक (elementary) नहीं मानते। इनके स्रोत को महत् कहा है। महत् सत्त्व और तमस् गुणयुक्त परमाणुओं का समूह है। सत्व, रजस् तथा तमस् को आजकल

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Varanasi

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भाषा में धन (+) ऋण (—) और शून्य (०) के संकेतों से लिखा जाता है।

जहां यह कहा गया है कि द्रव्य और विपरीत द्रव्य (anti-matter) के टकराव से दोनों विनष्ट हो जाते हैं, वहाँ भारतीय विज्ञान इसे मूल प्रकृति में लीन हो जाना मानते हैं।

इस पर भी जहाँ आजकल के वैज्ञानिकों की कला (technology) की प्रशंसा ही करनी पड़ेगी कि वे मूल प्रकृति को छू गये हैं, वहाँ भारतीय वैज्ञानिकों और दार्शनिकों की अद्वितीय खोज पर चकित होना पड़ता है कि उन साधन विहीन विद्वानों ने कैसे इस अद्भुत रहस्य को पा लिया था और वह भी उस काल में, जिसे वर्तमान अन्धविश्वासी काला युग (dark age) कहते हैं।

हम बता चुके हैं कि मूल प्रकृति सत्त्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था को कहते हैं। तीनों गुण एक दूसरे को विलीन कर रहे होते हैं।

वर्तमान वैज्ञानिक और उनसे पूर्व भारतीय वैज्ञानिक यह जान सके थे कि मूल प्रकृति कण रूप है। प्रत्येक कण को परमाणु कहा गया है। इसके कणों (particles) को प्रारम्भिक कण (elementary particles) कहा है। भारतीय वैज्ञानिक इलैक्ट्रोन (तैजस् अहंकार), प्रोटोन (वैकारी अहंकार) और न्यूट्रोन (भूतादि अहंकारों) को प्रारम्भिक कण नहीं मानते।

इस विषय में वैशेषिक दर्शन कहता है—

अणोर्महतश्चोपलब्ध्यनुपलब्धी नित्ये व्याख्याते॥ (वै० द० ७-१-८)

अणुओं से महत् की उपलब्धि और अनुपलब्धि (अर्थात् महत् से अणुओं का बनना अथवा टूटना) नित्य होता रहता है।

अणुओं से स्पष्ट अभिप्राय तैजस्, वैकारी और भूतादि अहंकारों से है। इनको ही 'matter' और 'anti matter' के नाम से पुकारा गया है। ये महत् में और महत् से ये अणु नित्य बनते और विलीन होते रहते हैं।

प्रकाशमान ऊर्जा (Radiant engery) जिसे 'गामा' (γ) किरणें कहा है, वह महत् में से निकलने वाला प्रकाश (तेज) प्रतीत होता है। यह कहा है कि गामा किरणें न्यूट्रिनोस ((neutrinos) में बदल जाती हैं जिसका न द्रव्यमान है और न कोई गुण।

इसे ही भारतीय शास्त्रों में तमोभूत, अप्रज्ञात, अलक्षणम्, तर्क से असिद्ध और अविज्ञेय माना है।

परन्तु प्रश्न जो भारतीयों के मन के सम्मुख उत्पन्न होता रहा है और जिसका समाधान ज्ञान और दर्शनशास्त्र कर रहे हैं, वह है कि उस न्यूट्रिनोस (neutri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

nos) से यह जगत् बना कैसे ? स्वयं बन गया अथवा इसके बनानेवाला कोई है ? ऐसा प्रतीत होता है कि वर्तमान विज्ञान इससे आगे जाने में हिचकिचाता है।

यह तो हम देखते हैं कि यह जगत् बना है। 'मैटर' और 'ऐण्टि-मैटर' पृथक्-पृथक् उपस्थित हैं और 'मैटर' से जगत् की अनेकानेक वस्तुएँ बनी हैं। न्यूट्रिनोस से यह सब कैसे बन गया ?

भारतीय वैज्ञानिक इसे इस प्रकार मानते हैं कि प्रत्येक परमाणु जिसे कदाचित् न्युट्रिनोस (neutrinos) कहा जा सकता है, में तीन गुण साम्यावस्था (balanced state) में उपस्थित हैं; परमात्मा के 'तेज' से ये गुण परस्पर सन्तुलित न रहकर बहिःमुख हो जाते हैं और पड़ोस के परमाणुओं को आकर्षित-विकर्षित करने लगते हैं। यह हम बता चुके हैं।

यहाँ तो यह बताना है कि परमात्मा के अस्तित्व को माने बिना और उसके तेज से गुणों का सन्तुलन टूटने को माने बिना जगत्-रचना वर्णन नहीं की जा सकती।

भारतीय वैज्ञानिक इस प्रश्न को अधिक महत्त्व का मानते हैं। तभी श्वेताश्वतर उपनिषद् में विद्वान् यही प्रश्न करते बताये गए हैं।

वे पूछते हैं कि इस जगत् का कारण ब्रह्म क्या है ? यह जगत् किससे बना है ? किसके द्वारा हम जीवित रहते हैं और किसके द्वारा प्रेरित होकर संसार की यात्रा कर सकते हैं ?

इसको उपनिषद्कार इस प्रकार वर्णन करता है—

सर्वाजीवे सर्वसंस्थे बृहन्ते, अस्मिन् हंसो भ्राम्यते ब्रह्मचक्रे।
पृथगात्मानं प्रेरितारं च मत्वा, जुष्टस्ततस्तेनामृतत्वमेति ॥
उद्गीतमेतत्परमं तु ब्रह्म, तस्मिंस्त्रयं सुप्रतिष्ठाक्षरं च।
अत्रान्तरं ब्रह्मविदो विदित्वा, लीना ब्रह्मणि तत्परा योनिमुक्ताः ॥

(श्वेता० उप० १-६,७)

अर्थात्—इस संसार में जब जीव ऐसे प्रतिष्ठित हैं जैसे भँवर में फँसा हुआ हंस होता है। इस (भँवर और हंस) से पृथक् वह प्रेरणा देनेवाला आत्मा है। इस आत्मा के साथ जुष्ट होने से जीव संसार रूपी भँवर से निकलकर मोक्ष को प्राप्त करता है।

जो ऊपर कहा गया है और जिसमें तीन अक्षर (अविनाशी तत्त्व) प्रतिष्ठित हैं और जिसमें ब्रह्म लीन, मरण-जन्म से मुक्त जीव भी उपस्थित हैं, वह परमब्रह्म है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपनिषद्कार ने संक्षेप में इस जगत् का विश्लेषण कर दिया है। वह कहता है कि यह जगत् परमब्रह्म है और इसमें तीन अविनाशी तत्त्व उपस्थित हैं। साथ ही यह कहा है कि इन तीनों के अतिरिक्त इसमें ब्रह्म लीन आत्माएँ भी हैं जो जन्म-मरण से रहित हैं।

भँवर पड़ रहा है मूल प्रकृति में। मूल प्रकृति के परमाणु जब गुणों के बहिर्मुख होने से परस्पर आकर्षण-विकर्षण करने लगते हैं तो उनमें गति उत्पन्न होती है। उस गति के परिणामस्वरूप ही इस जगत् से भिन्न-भिन्न पदार्थ बनते हैं और सूर्य, चन्द्र, तारागण इत्यादि बनते हैं तथा गति करने लगते हैं।

इस प्रकृति में उत्पन्न भँवर में जीवात्मायें फँसी रहती हैं। हमने भारतीय परम्परा का मूल मन्त्र बताया है कि यह जगत् शून्य से नहीं बना। तो यह किससे बना है? यह हमने वर्तमान वैज्ञानिकों और भारतीय वैज्ञानिकों के कथनानुसार बताया है।

आधुनिक वैज्ञानिक मूल द्रव्य का नाम न्यूट्रिनोज (neutrinos) कहते हैं। भारतीय इसे प्रकृति कहते हैं। सांख्यदर्शन में कहा है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः, प्रकृतेर्महान्महतोऽहङ्कारोऽहङ्कारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं, तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि, पुरुष, इति पञ्चविंशतिर्गणः॥

(सां० १-६१)

अर्थात्—प्रकृति सत्त्व, रजस् तथा तमस् गुणों की साम्यवस्था का नाम है। प्रकृति से महत् बनता है। महत् से अहंकार, अहंकारों से पंच तन्मात्रा और दोनों प्रकार की इन्द्रियाँ, तन्मात्रा से स्थूल भूत, इनके अतिरिक्त पुरुष (जीवात्मा) पच्चीसवाँ गण है।

इसी को स्पष्ट करने के लिए उपनिषद्कार ने इस प्रकार कहा है—

संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च, व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्, ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥
ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा, ह्येका भोक्तृभोगार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा विश्वरूपो ह्यकर्ता, त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत्॥

(श्वेता० १-८,९)

इसका अर्थ है—(इस जगत् में) परस्पर मिले हुए नाशवान और अविनाशी (पदार्थ) विद्यमान हैं। ये व्यक्त और अव्यक्त हैं। इन दोनों रूपों का पालन-पोषण करनेवाला परमात्मा है। एक अनीश (जो रचना करने में असमर्थ) आत्मा है। वह भोग की भावना (इच्छा) रखने से बँधा रहता है। वह जब देव

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पालन करनेवाले ईश्वर) को जान लेता हैं तब वह सब बन्धनों से मुक्त हो जाता है।

(अतः) ज्ञानवान और अज्ञानी, सामर्थ्यवान और असमर्थ दो अजन्मा (अनादि तत्त्व) हैं। एक अन्य अजन्मा (अनादि) तत्त्व भी है। वह भोग करने वाले (जीवात्मा) के लिए भोग-सामग्री उपस्थित करता है। अनन्त आत्मा (जो सबका पालन करनेवाला है) विश्व रूप (विश्व को रूप देनेवाला) है। वह अकर्त्ता (संसार का भोग न करनेवाला) है। इन तीनों को जो ब्रह्म जानता है, वह कृत-कृत्य हो जाता है।

इसका भावार्थ यह है कि जगत् में प्रकृति दो रूपों में उपस्थित है। एक रूप है व्यक्त और नाशवान्। दूसरा रूप है अव्यक्त और अविनाशी। इनके अतिरिक्त जगत में दो अन्य तत्त्व हैं। एक ईश है दूसरा अनीश है। अनीश प्रकृति के भोग की इच्छा रखता है और उस इच्छा से प्रकृति के भँवर में फँसा रहता है। ये तीन अविनाशी ब्रह्म कहलाते हैं। जो ऐसा जानता है वह कृत-कृत्य हो जाता है।

इस भाव का वर्णन वेद में इस प्रकार किया है—

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि षस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति॥

यत्रा सुपर्णा अमृतस्य भागमनिमेषं विदयाभिस्वरन्ति।
इनोविश्वस्य भुवनस्य गोपाः स मा धीरः पाकमत्रा विवेश॥

यस्मिन् वृक्षे मध्वदः सुपर्णा निविशन्ते सुवते चाधि विश्वे।
तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं न वेद॥

(ऋ० १-१६४-२०, २१, २२)

अर्थात्—दो सुन्दर पखोंवाले, समान सम्बन्ध रखनेवाले, मित्र के समान व्यवहार वाले एक वृक्ष पर आश्रय लिये हुए हैं। उनमें से एक वृक्ष के पके फलों का स्वाद लेता है और दूसरा न लेता हुआ सब ओर देखता है।

जिस प्रकार वह सुपर्णा (सुन्दर पंखोंवाला) मोक्ष भाग का निरन्तर परमात्मा से माँग करता करता है। वह कहता है कि सूर्य जो सम्पूर्ण भुवनों (नक्षत्रों और ग्रहों) का पालन करने वाला है, मुझ धीर में भी प्रवेश करता (जन्म देता) है।

जिस वृक्ष पर मधु (स्वादयुक्त फलों) को खाने वाले सुपर्णा रहते हैं और सन्तान उत्पन्न करते हैं, उसी के फलों को जो स्वादिष्ट मानता है और नष्ट होने वाला मानता है, वह परमात्मा को नहीं जानता।

इन वेद मंत्रों में प्रकृति को वृक्ष कहकर स्मरण किया है। प्रकृति

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की भाँति काट-छाँटकर जगत् के पदार्थ निर्माण करती है। दो आत्म-तत्त्व सुपर्णा कहे हैं। वे इस प्रकृति पर स्थित हैं। एक तो प्रकृति का भोग करता है और दूसरा साक्षी रूप हो देखता है।

जो भोग करता है वह परमात्मा से अपने लिये मोक्ष का भाग माँगता है और इसीलिये सूर्य से मनुष्य जन्म पाने की लालसा करता है। आदि मनुष्य सूर्य से ही शरीर पाता है।

जो जीव प्रकृति का भोग करता है, इसे पसन्द करता है, इसमें रत हो सन्तान उत्पन्न करता है, ऐसा जीव परमात्मा को प्राप्त नहीं होता और जन्म-मरण के बन्धन में फँसा रहता है।

अतः भारतीय मान्यता के अनुसार प्रसिद्ध जगत् में तीन पदार्थ हैं। प्रकृति जीवात्मायें और परमात्मा। तीनों अनादि हैं। परन्तु प्रकृति के दो स्वरूप हैं। एक स्वरूप अनादि है, दूसरा परिणामी अर्थात् नाशवान् है।

: २ :

मूल तत्त्वों की सिद्धि

परमात्मा

यह हम ऊपर बता चुके हैं कि कुछ पदार्थ इन्द्रियगोचर हैं। कुछ इन्द्रिय-गोचर नहीं। जो इन्द्रियगोचर नहीं, वे न आँखों से देखे जा सकते हैं और न कानों से सुने जा सकते हैं। वे न सूंघे जा सकते हैं और न छूकर जाने जा सकते हैं। वे रसना का भी विषय नहीं। बढ़िया से बढ़िया यन्त्र द्वारा भी उनको जाना नहीं जा सकता। कारण यह कि यन्त्र तो केवल इन्द्रियों की सामर्थ्य को ही बढ़ा सकते हैं। अव्यक्त पदार्थ इन्द्रियों की पहुँच से दूर हैं।

इस पर भी ऐसे पदार्थ हैं और उनका ज्ञान प्राप्त करने का ढंग भी है। वह ढंग है अनुमान-प्रमाण का। अनुमान की व्याख्या हम एक से अधिक स्थान पर कर चुके हैं।

प्रकृति, आत्मा और परमात्मा जगत् के मूल पदार्थों के विषय में इसी प्रमाण से सिद्धि होती है। ये प्रत्यक्ष तो हो ही नहीं सकते। ये इन्द्रियगोचर नहीं। शब्द-प्रमाण उनके लिये है जो किसी ज्ञानवान पर अथवा किसी ज्ञान के ग्रन्थ पर विश्वास रखता है।

इस अध्याय के पूर्व की कण्डिका में हमने वेद और उपनिषद् के प्रमाण दिये हैं। ये शब्द-प्रमाण के अन्तर्गत आते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो वेद तथा उपनिषदों को नहीं मानते, उनके लिये दर्शनशास्त्र अनुमान-प्रमाण से इन अव्यक्त पदार्थों के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं।

उदाहरण के रूप में ब्रह्मसूत्रों में एक सूत्र है—

जन्माद्यस्य यतः॥ (ब्र० सू० १-१-२)

अर्थात्—जिससे जन्मादि होता है (वह ब्रह्म है)। यहाँ ब्रह्म से अभिप्राय परमात्मा है।

जन्मादि का अभिप्राय है—रचना, पालन और लय। यहां जन्मादि से अभिप्राय इस जगत् की रचना, इस जगत् का पालन और इस जगत् का लय होना है। जो ऐसा करने की सामर्थ्य रखता है, वह परमात्मा है।

ऐसा अर्थात् रचना, पालन और प्रलय हो रहा है क्या ? हम देखते हैं कि ऐसा हो रहा है।

पृथिवी का उदाहरण ले सकते हैं। यह बनी है। यह चल रही है। यह एक दिन टूटेगी। इसके जन्म, चलने और लय होने की बात इसके वर्तमान स्वरूप के विषय में कही गयी है। पृथिवी वर्तमान स्वरूप में बनी है, कार्य कर रही है और टूटेगी।

यह बनना और टूटना स्वयमेव नहीं होता। इस कारण इन कार्यों के करने वाला कोई होना चाहिये।

कुछ लोग कहते हैं कि यह जगत्-रचना परमाणुओं की निरन्तर (perpetual) गति से होता है। परमाणुओं में 'perpetual' गति तो है नहीं। परमाणु जड़ हैं। जड़ में गति-परिवर्तन नहीं हो सकता। जैसा कि न्यूटन के गति के नियमों में लिखा है कि द्रव्य का कोई टुकड़ा खड़ा हो तो खड़ा ही रहेगा और यदि चल रहा है तो सीधी रेखा में चलता ही रहेगा, जब तक उस पर किसी अन्य शक्ति का प्रभाव न हो।

परमाणुओं की गति सीधी रेखा में नहीं होती। परिमण्डलों (atoms) में इलैक्ट्रोन इत्यादि चक्राकार गति में घूमते हैं। चक्राकर गति में एक से अधिक शक्तियों का समागम होता है। वह दूसरी शक्ति कहाँ से आयी ? साथ ही हमने पूर्व के अध्याय में न्यूट्रिनोस (neutrinos) के बनने की बात लिखी है। मैटर और ऐण्टि-मैटर के परमाणुओं के टकरा जाने पर दोनों विनष्ट हो न्यूट्रिनोस (neutrinos) बनते हैं जो सर्वथा कार्य-शक्ति विहीन हो जाते हैं। वे पुनः मैटर और ऐण्टि-मैटर रूप में कैसे आते हैं ? इसमें तो किसी निरन्तर (perpetual) गति का भास नहीं होता।

निरन्तर गति भी सीधी रेखा में नहीं होती। इसमें पदार्थ का जाना और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आना होता है। यह दिशा-परिवर्तन विना किसी दूसरी शक्ति के हस्तक्षेप के नहीं हो सकता।

भारतीय विज्ञान यह मानता है कि इन परमाणुओं में गति परमात्मा पैदा करता है। हम लिख आये हैं कि सत्त्व, रजस् और तमस् की साम्यावस्था भंग परमात्मा के तेज से होती है।

दर्शनशास्त्र के सूत्र (ब्र० सू० १-१-२) का यही अभिप्राय है। रचना का आरम्भ गुणों की साम्यावस्था भंग होने पर होता है।

यदि गुणों की साम्यावस्था भंग न हो तो जगत् की रचना हो ही नहीं सकती। प्रकृति 'inert' है। परमात्मा का बल उसमें गति उत्पन्न करता है तो सृष्टि-रचना होती है।

इस प्रकार परमात्मा (ईश्वर अर्थात् महान् शक्ति के स्वामी) की आवश्यकता समझी गयी।

न्यूट्रिनोस में गतिरहित कण (particles) हैं। इसको पुनः गति में लाने के लिये किसी शक्तिमान् तत्त्व की आवश्यकता रहती है। यही परमात्मा है।

अन्य युक्तियाँ भी शास्त्र में दी गयी हैं। एक अन्य युक्ति इस प्रकार है—

शास्त्रयोनित्वात्॥ (ब्र० सू० १-१-३)

इसका अर्थ है—जो शास्त्र का उद्गम स्थान है।

शास्त्र का अभिप्राय ज्ञान है।

इस मानव समाज को सत्य ज्ञान का देने वाला परमात्मा माना जाता है। जब हम यह मानते हैं कि आदि सृष्टि में युवा स्त्री-पुरुष उत्पन्न हुए तो उनको प्रारम्भिक ज्ञान देने वाला कोई होना चाहिये। भारतीय दार्शनिक यह मानते हैं कि सृष्टि के आदि में परमात्मा ने मनुष्य को वेद का ज्ञान दिया।

जो लोग यह मानते हैं कि मनुष्य इतर् जीव-जन्तुओं से उन्नति करता हुआ वर्तमान मनुष्य बना है, वे वेद ज्ञान, जैसा कि हम मानते हैं, की आवश्यकता नहीं समझते। वे समझते हैं कि सब ज्ञान मनुष्य ने परीक्षा करके स्वयं सीखा है।

यह अनुभव और परीक्षा से सिद्ध नहीं होता। वेद ज्ञान के विषय में हम पृथक् अध्याय में लिखेंगे। यहाँ इतना समझ लेना चाहिये कि कुछ मूल रूप में ज्ञान मिले विना मनुष्य समाज ज्ञानवान् नहीं हो सकता था। ऐसा भारतीय दार्शनिकों का मत है। अतः उनका कहना है कि मूल सत्य ज्ञान देनेवाला परमात्मा है और वह ज्ञानवान् है।

परमात्मा के अस्तित्व को सिद्ध करने में एक युक्ति यह दी गयी है—

तत् समन्वयात्॥ (ब्र० सू० १-१-४)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(जगत् के) सब पदार्थों में समन्वय है। अर्थात उनमें समन्वय से कार्य हो रहा है। लाखों वर्ष से पृथिवी पर और अन्तरिक्ष में सब कार्य विना टकराव हुए हो रहा है। इसे ही समन्वय कहते हैं और ऐसी व्यवस्था रखनेवाला कोई ज्ञानवान् और सामर्थ्यवान् तत्त्व मानना पड़ता है। वही परमात्मा है।

और भी कहा है—

ईक्षतेर्नाशब्दम् ॥ (ब्र० सू० १-१-५)

ईक्षण करनेवाला कोई है। ऐसा वेद में कहा है।

ईक्षण के शाब्दिक अर्थ हैं निरीक्षण करना। किसी कर्म के निरीक्षण का अर्थ है उस कार्य के आरम्भ करने, उस कार्य की दिशा निश्चय करने और उसको समाप्त करने का निश्चय करना।

जगत्-रचना एक समय पर आरम्भ हुई। उस समय से रचना-कार्य एक निश्चित दिशा में चल रहा है और यह एक निश्चित समय पर समाप्त होगा। यह एक ज्ञानवान्, सामर्थ्यवान् और चेतन तत्त्व का कार्य हो सकता है। जगत्-रचना का कार्य करने वाला परमात्मा है। वह चेतन है।

चेतन के लक्षण—'discretion, direction और decision लेने वाला तत्त्व है।

किसी भी कार्य में इन तीनों (काल, दिशा और देश) का आरम्भ उसकी दिशा, उसको समाप्त करने का निर्णय करने वाले को चेतन कहते हैं और जगत् के विषय में ऐसा करने वाले को परमात्मा कहते हैं।

इस प्रकार युक्ति पर युक्ति दी जा रही है जो यह सिद्ध करती है कि इस ब्रह्माण्ड में कोई ऐसा सामर्थ्यवान्, ज्ञानवान् और निर्णायक प्रवृत्ति वाला चेतन तत्त्व है जो इस जगत् की रचना कर इसके कार्य को चला रहा है।

ऐसा सामर्थ्यवान पूर्ण ब्रह्माण्ड में एक ही है। यदि एक से अधिक हों तो कार्य में समन्वय नहीं भी हो सकता। अतः जगत् को रचने वाला एक ही है।

वैसे वेदादि शास्त्रों में भी इसका प्रमाण है। ये प्रमाण यह प्रकट करते हैं कि भारतीय दार्शनिक, परमात्मा के एक होने में जो युक्ति ऊपर दी गयी है, उसे स्वीकार करते हैं।

वेद में ऐसा माना है—

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात्।
सं बाहुभ्याय धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एक॥

(ऋ० १०-८१-३)

अर्थात—वह (परमेश्वर) सर्वत्र देखता हुआ, सर्वत्र मुख वाला (सबको

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सर्वत्र उपदेश देने वाला), जो सर्वत्र बाहें रखता है (सब स्थान पर कार्य करने वाला), सर्वत्र पाँव वाला (सब स्थान पर पहुँचा हुआ) सबको अपने बाहुबल से पाप पुण्य का फल देने वाला, गति देने वाला, दिव्य गुणयुक्त एक ही है।

उपनिषद्कार भी परमात्मा के एक होने को मानता है। वहां इस प्रकार कहा है—

एको हि रुद्रो न द्वितीय तस्थुर्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः।
प्रत्यङ् जनांस्तिष्ठति संचुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपाः॥

(श्वेता० ३-२

अर्थात्—परमात्मा एक ही है। दूसरा सिद्ध नहीं हो सकता। वह अकेला ही अपनी शक्ति से इन लोकों का स्वामी है। सृष्टि का सृजन करने के उपरान्त वही इसकी रक्षा करता है और अन्त काल में वही इसे समेट लेता है। अपनी रचना के स्वरूप में वह सबके सामने खड़ा है।

: ३ :

जीवात्मा

हम वेद (ऋग्० १-१६४-२०) के प्रमाण से बता चुके हैं कि परमात्मा के अतिरिक्त एक अन्य चेतन तत्त्व है। इसे भी सुपर्णा कहा है। जैसे पक्षी अपने पंखों से उड़ते हैं, वैसे ही ये दोनों (परमात्मा और आत्मा) चेतन तत्त्व अपनी सामर्थ्य से कार्य करते हैं।

जीवात्मा को भोग की इच्छा वाला, जो वृक्ष के पके फल स्वाद से खाता है, कहा है।

इसके साथ ही श्वेताश्वतर उपनिषद् के प्रमाण से हमने बताया है कि जीवात्मा अल्प सामर्थ्य वाला और अल्प ज्ञान वाला है।

जीवात्मा को भी दर्शनशास्त्र अनुमान प्रमाण से सिद्ध करता है। यह हम बता चुके हैं कि इस जगत् में तीनों मूल तत्त्व मिले-जुले देखे जाते हैं। इस कारण दर्शनशास्त्र इनको जगत् से ही पृथक-पृथक सिद्ध करने का यत्न करता है। वहां लिखा है—

सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात्॥
विवक्षितगुणोपपत्तेश्च॥ (ब्र० सू०—१-२-१,२)

अर्थात— जो सर्वत्र प्रसिद्ध है, उस विषय में वर्णन करने से। साथ ही हम देखते हैं कि इसमें स्थित गुणों से स्पष्ट रूप में पता चलता है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि यह एक पदार्थ नहीं।

आगे कहा गया है—

अनुपपत्तेस्तु न शारीरः॥ (ब्र० सू० १-२-३)

(जगत् में) कुछ गुणों के उपस्थित न होने से यह शरीर और शरीरी नहीं है।

शरीर का अभिप्राय है प्राणी का शरीर और शरीरी का अभिप्राय है प्राणी में शरीर धारण करने वाला।

अर्थात् जगत् को दो भागों में बाँट दिया गया है। शरीर शरीरी एक और इसके अतिरिक्त दूसरा। शरीर और शरीरी तो जीवात्मा और वह जड़ जगत् है जिससे शरीर बना है। इन दोनों के अतिरिक्त वह तत्त्व है, जिसके विषय में दर्शन शास्त्र लिख चुका है—

जन्माद्यस्य यतः, शास्त्रयोनित्वात् तथा तत्तु समन्वयात्।

जगत् में ऐसे तत्त्वों का दर्शन होता है जिसमें परमात्मा के उक्त गुण नहीं हैं। अभिप्राय यह कि इस जगत् में प्राणी भी हैं, परन्तु प्राणियों के शरीर और शरीर के अध्यक्ष में वे गुण दिखायी नहीं देते जो परमात्मा में माने गये हैं।

कौन से गुणों की अनुपस्थिति पायी जाती है? सूत्रकार कहता है—

कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ॥ (ब्र० सू० १-२-४)

कर्म और कर्ता के कहे जाने से। यह कहा गया है कि इस जगत् की रचना और प्रलय करने वाला परमात्मा है। यह कर्म कहा जाता है। भगवत् गीता में कर्म के लक्षण किये गए हैं—'**भूतभावोद्भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः**'।

(भ० गी० ८-३)

अर्थात्—वने पदार्थों को बनाना और उनका विसर्ग करना कर्म है। अर्थात् जगत् की रचना और लय करने वाला कर्ता है।

जगत् के कई अंगों में यह गुण नहीं है। इस कारण कहा है कि कुछ गुणों के शरीर और शरीरी में उपस्थित न होने से परमात्मा शरीर तथा शरीरी नहीं।

परमात्मा पूर्ण जगत् पर शासन करता है। इस कारण भी यह शरीरी नहीं।

दर्शनाचार्य इस विषय में कहता है—

अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ।

(ब्र० सू० १-२-७)

अर्थात्—शरीरी बहुत छोटे संस्थान पर शासन करता है और परमात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्योम की भाँति सर्वत्र उपस्थित है। यदि इसे शरीरी कहो तो ठीक नहीं।

यह सब इस कारण लिखा है कि शरीर में शरीरी भी कुछ तो निर्माण करता है। वह अन्न को खाकर रक्त, मांस, मज्जा इत्यादि को बनाता है; परन्तु वह परमात्मा नहीं है। यह इस कारण कि उसका कार्य-क्षेत्र (शरीर) बहुत छोटा-सा है। परमात्मा का कार्य-क्षेत्र ब्रह्माण्ड उससे भी परे है।

शरीर में चेतना है। तो क्या यह चेतना परमात्मा के कारण है? क्योंकि वह भी वहाँ उपस्थित है।

इस बात को सूत्रकार मानता है। वह कहता है कि जीवात्मा और परमात्मा दोनों शरीर में उपस्थित होते हैं। परमात्मा तो पूर्ण शरीर में व्याप्त होता है, परन्तु जीवात्मा एक छोटे से स्थान गुहा में उपस्थित होता है।

गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात्॥ (ब्र० सू० १-२-११)

अर्थात्—गुहा में उपस्थित दो आत्म तत्त्वों के दर्शन करने से (हम कह सकते हैं) कि शरीर में शरीरी परमात्मा से पृथक् है।

परमात्मा के विषय में तो इसकी सर्वत्र व्यापकता कही जा चुकी है। परन्तु गुहा (मस्तिष्क में रिक्त स्थान) में शरीरी का होना इसके शरीर में कर्मों से पता चलता है।

प्रश्न उपस्थित होता है कि शरीर के कर्म भी परमात्मा के ही क्यों न समझ लिये जायें?

दोनों के विशेषणों में अन्तर है। एक अनन्त है, दूसरा केवल शरीर में कार्य करता है।

सूत्रकार कहता है—

अन्तर उपपत्तेः॥ (ब्र० सू० १-२-१३)

जगत् में प्राणियों को देखा और उनके कार्य को समझा तो पता चला कि प्राणी के शरीर में कार्य करने वाला वह नहीं जो इस पूर्ण जगत् में कार्य करता है। शरीर में कार्य करने वाला चेतन बहुत ही सीमित ज्ञान और सामर्थ्य रखता है। यही बात जो यहाँ युक्ति से सिद्ध की है वह श्वेताश्वतर उपनिषद् (१-९) में वक्तव्य के रूप में कही गयी है। वहाँ लिखा है—

'ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशा.....।'

दो हैं। ज्ञानी और अज्ञानी; साथ ही ईश और अनीश। शास्त्र में जीवात्मा के लिंग भी बताये हैं। न्याय दर्शन में लिखा है—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गम्॥ (न्याय द० १-१-१०)

अर्थात्—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, चेतना ये आत्मा के लिंग हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकूल की कामना करना, विपरीत से द्वेष करना, सुख एवं दुःख का अनुभव करना, प्रयत्न करना और चेतना--इन चिह्नों से आत्मा का होना प्रकट होता है।

यहाँ देखने में आता है कि जगत् के उन पदार्थों में, जिन्हें हम प्राणी कहते हैं, पूर्वोक्त लक्षण पाये जाते हैं' जिनमें ये लक्षण नहीं होते, उनको हम प्राणी नहीं कहते।

प्राणी में चेतना के लक्षण पाये जाते हैं। चेतना के लक्षण हम ऊपर वर्णन कर आये हैं। ईक्षण करने का गुण चेतना के कारण होता है। अर्थात् कार्य को आरम्भ करने का समय, इस कार्य की दिशा और कार्य समाप्त करने का निश्चय करना चेतना के कारण होता है।

प्राणी में ये लक्षण पाये जाते हैं। इस कारण शरीर का अध्यक्ष भी चेतन है, परन्तु इसका कार्य-क्षेत्र शरीर तक ही सीमित होता है। इस कारण यह परमात्मा नहीं।

दोनों के क्षेत्रों में अन्तर होने के अतिरिक्त भी दोनों में अन्तर है। जीवात्मा संसार में प्रकृति का भोग करता हुआ सुख प्राप्त करता है। परमात्मा प्रकृति का उपभोग नहीं करता। अतः प्राणी में चेतन तत्त्व परमात्मा से भिन्न है।

यह सिद्ध हो गया है कि प्राणी शरीरी नहीं। इसी प्रकार परमात्मा शरीर भी नहीं।

शरीर, जीवात्मा सहित अथवा जीवात्मा रहित, वह कुछ नहीं कर सकता जो परमात्मा के कर्म बताये गए हैं।

जगत् के पदार्थों की रचना और उनको लय करने की शक्ति न तो जीवित प्राणी में है और न ही मृत प्राणी अर्थात् शरीर में। जीवात्मा-रहित शरीर जगत् के अन्य जड़ पदार्थों की भाँति ही हो जाता है। अतः शरीर और अन्य जड़ पदार्थ समान हैं।

कुछ लोग यह युक्ति करते हैं कि अन्न खाने से शरीर बनता है और वह कार्य करता है। इस कारण अन्न ही चेतना है।

सूत्रकार इसका खण्डन करता है। वह कहता है कि जब प्राणी मर जाता है, तब प्राणी अन्न नहीं खा सकता। इस कारण अन्न शरीर नहीं खाता। यह शरीर द्वारा किसी और के लिये होता है।

अन्न से बनता तो शरीर ही है, परन्तु अन्न खाने वाला, उसे पचाकर शरीर बनाने वाला आत्मा है जो मरने पर इसे छोड़ जाता है। यह इस प्रकार है जैसे कि मकान का स्वामी ईंट, चूना से मकान की मरम्मत करवाता है। मरम्मत

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मकान की होती है, परन्तु बनवाता अथवा बनाता मकान का स्वामी है और अपने हित के लिये ही वह बनवाता है। इसी प्रकार शरीर में अन्न से शरीर का बनना है।

शरीर जड़ है। जड़ के भी लक्षण कर दिये हैं। दर्शनाचार्य कहता है—

व्यतिरेकानवस्थितेश्च अनपेक्षत्वात् ॥ (ब्र० सू० २-२-४)

इसका अर्थ है—जड़ पदार्थ अपनी स्थिति नहीं बदलता जब तक कोई अन्य उस पर प्रभाव न डाले।

यह इस प्रकार कहा जा सकता है—

Every particle of matter continues in a state of rest or motion with a constant speed in a straight line unless compelled by a force to change that state. (Newton's 1st law of motion)

जब जड़ पदार्थों में यह गुण रहता है तो इससे जड़ पदार्थ न तो परमात्मा है और न ही शरीर है। शरीर और जड़ पदार्थ समान हैं।

आत्मा-युक्त शरीर के विषय में लिखा है—

ज्ञोऽत एव ॥ (ब्र० सू० २-३-१८)

(आत्मा तत्त्व के होने से) वह चेतन है।

इसके साथ यह भी कहा है—

उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ॥ (ब्र० सू० २-३-१९)

प्राणी (जीवयुक्त शरीर) में उन्नति करता है अथवा भोगों में फँसकर संसार में लिप्त होकर पतन के मार्ग पर जाता है। यह शरीर नहीं करता, वरन् यह उसमें उपस्थित जीवात्मा करता है। इसी भाव को गीता में इस प्रकार प्रकट किया है—

अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ॥ (भ० गी० २-१८)

अर्थात्—यह देह अन्त वाली है। शरीरी (जीवात्मा) नित्य (अनादि), अक्षर है। देह नष्ट हो जाती है।

: ४ :

प्रकृति

जगत् का तीसरा मूल तत्त्व है प्रकृति। वेद में इसकी उपमा वृक्ष से की गई है। इसे वृक्ष इस कारण कहा गया है, क्योंकि यह भी वृक्ष की भाँति काट-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छाँटकर उपयोग में लायी जाती है। यह प्रकृति है। कारण यह कि यह जगत् शून्य से नहीं बना। शून्य से कुछ बन सकता नहीं। इस कारण जगत् की विभिन्न वस्तुओं का भी कुछ मूल है।

सांख्याचार्य कपिल मुनि प्रकृति की सिद्धि इस प्रकार करता है। वह कहता है—

स्थूलात्पञ्चतन्मात्रस्य ॥ सां० १-६२)

स्थूल पदार्थों को देखकर तन्मात्राओं का ज्ञान होता है। यह इस प्रकार है कि वस्तु के कण (particles) परस्पर सम्बद्ध जिस शक्ति से हो सकते हैं, उस शक्ति का ज्ञान स्थूल पदार्थों को देखकर होता है।

एक लोहे की डली को लेकर रेती से रगड़कर चूर्ण किया जा सकता है। लोह चूर्ण को भी पीसकर और बारीक किया जा सकता है। ये सब कण लोहे की डली में सम्बद्ध थे। ये जिस शक्ति से सम्बद्ध थे, उसे तन्मात्रा कहा गया है।

इसी प्रकार जल की एक बूंद गरम करने से वाष्प में परिवर्तित हो सकती है। वाष्प जल की बहुत छोटी-छोटी बूंदें ही हैं। जल की बूंद में वे इकट्ठे थे। क्यों इकट्ठे थे? उनको बाँधने वाली एक शक्ति थी। इसे भी तन्मात्रा कहते हैं। यह वही शक्ति है जो लोहे के कणों को बांधकर रखे हुई थी। यह एक प्रकार की तन्मात्रा है।

जल में विद्युत तरंग गुजारने से दो प्रकार के वायवी पदार्थ बनते हैं। एक का नाम हाईड्रोजन है और दूसरे का नाम ऑक्सीजन। यह देखा गया है कि जल के एक अणु में दो वायवी पदार्थों के कण उपस्थित थे। परन्तु जल के अणु में ये वायवी कण बँधे हुए थे। क्यों? यह बन्धन एक अन्य प्रकार की शक्ति से था। साँख्याचार्य इसे दूसरी प्रकार की तन्मात्रा कहता है। वर्तमान विज्ञान में पहली तन्मात्रा को 'cohesion' कहते हैं, दूसरी तन्मात्रा को 'chemical afinity' कहते हैं।

एक ऐटम (परिमण्डल) में प्रोटोन और न्यूट्रोन वाले केन्द्र के चारों ओर बहुत से इलैक्ट्रोन घूमते रहते हैं। कपिल मुनि के विचार से ये एक शक्ति से घूम रहे हैं। इसे तीसरी प्रकार की तन्मात्रा कहता है। इसे inter atomic energy कहते हैं।

एक वृक्ष से आम पृथिवी पर गिरता है। यह भी एक प्रकार की शक्ति से गिरता है। इसे चौथी प्रकार की तन्मात्रा कहा गया है। इसे भू-आकर्षण (gravity) कहते हैं।

स्थूल पदार्थों में एक अन्य प्रकार की शक्ति भी पायी जाती है। इसे चुम्ब-

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection. Jangamwadi

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कीय शक्ति (magnetic force) कहते हैं। यह पाचवीं तन्मात्रा है। स्थूल पदार्थों को देखकर इन शक्तियों का ज्ञान होता है।

सांख्याचार्य अपनी युक्ति को आगे ले जाता है—

बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाहङ्कारस्य ॥ (सां० १-६३)

बाहरी और भीतरी इन्द्रियों तथा उन (तन्मात्राओं) को देखकर अहंकारों का ज्ञान प्राप्त होता है।

पूर्वोक्त तन्मात्राओं का आविर्भाव और प्राणी में कर्मेन्द्रियों तथा ज्ञानेन्द्रियों एवं मन के कार्य को देखकर मन में प्रश्न उत्पन्न होता है कि इनकी उत्पत्ति किसी तेजवान पदार्थ से हुई है। उन तेजवान पदार्थ को अहंकार कहते हैं। इन्द्रियों के गोलक (tissues) भी हैं जिनमें इन्द्रियाँ स्थित हैं। ये सब जिस पदार्थ से उत्पन्न होते हैं, वे अहंकार समझे गये हैं।

अहंकार में गोलकों के मूल पदार्थ भी होने चाहिएँ और उन शक्तियों को उत्पन्न करने की भी सामर्थ्य होनी चाहिये जिनमें तन्मात्राएँ उत्पन्न हो सकें और इन्द्रियाँ काम कर सकें।

तन्मात्राओं और इन्द्रियों के साथ शरीर के अवयव उत्पन्न करनेवाले पदार्थ में द्रव्यत्व भी होना चाहिए और ऊर्जा भी होनी चाहिये। यह अहंकारों की कल्पना है।

सूत्रकार अपनी युक्ति को आगे ले जाता है—

तेनान्तःकरणस्य ॥ (सां० १-६४)

इन (अहंकारों) को देखकर इनके मूल अन्तःकरण (महत्) का ज्ञान होता है।

महत् ऐसा पदार्थ होना चाहिए, जिसमें से अहंकारों की उत्पत्ति हो सके। इसमें ऊर्जा और द्रव्यत्व का संयोग होना चाहिए।

ततः प्रकृतेः ॥ (सां० १-६५)

महत् से प्रकृति का ज्ञान होता है।

और कहा है—

मूले मूलाभावादमूलं मूलम् ॥ (सां० १-६७)

मूल में मूल का अभाव होता है। अर्थात् मूल पदार्थ प्रकृति का मूल कुछ नहीं। वह अनादि है। वह स्वयं मूल है।

जो भी इस जगत् का मूल पदार्थ है, वह प्रकृति है।

इस प्रकार स्थूल पदार्थों से कारण ढूंढते हुए सांख्याचार्य जगत् के मूल पदार्थ (प्रकृति) तक पहुँच गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु सांख्याचार्य की युक्ति प्रकृति तक आकर रुकी नहीं। प्रकृति जगत् का मूल कारण तो पता चला। परन्तु प्रकृति में ये परिवर्तन हुए क्यों?

सांख्याचार्य कहता है कि ये परिवर्तन शरीर में उपस्थित जीवात्मा के लिए ही प्रतीत होते हैं।

प्रकृति तो जड़ है। इस कारण न तो यह स्वयं इन परिवर्तनों में से गुज़र सकती है, न ही इसमें होने वाले परिवर्तन उसके अपने लिये हो सकते हैं। अतः आचार्य इस परिणाम पर पहुँचता है—

संहतपरार्थत्वात् पुरुषस्य ।। (सां० १-६६)

यह संहत (काट-छाँट) दूसरे अर्थात् पुरुष (जीवात्मा) के लिए है।

परमात्मा प्रकृति का भोग करनेवाला नहीं माना गया। इस कारण प्रकृति के संयोग-वियोग परमात्मा के लिए नहीं। यह भोग करने वाले के भोग के लिए ही हैं।

परमात्मा खण्डित नहीं हो सकता। यह सर्वव्यापक और सर्वत्र एकरस है। परन्तु जगत् में परिवर्तन होते और उसके टुकड़े-टुकड़े होते तो दिखायी देते हैं। अतः जगत् का मूल परमात्मा नहीं। जगत् का निर्माता परमात्मा है।

जैसे घड़े का मूल कारण मिट्टी है और इसके बनाने वाला कुम्हार है। यही बात जगत् की है। प्रकृति इसका मूल कारण है। इसमा निर्माता परमात्मा है।

और घड़े का प्रयोग करने वाला घड़े का ग्राहक होता है। इस प्रकार जगत् का प्रयोग करने वाला जीवात्मा है।

यहाँ यह भी बता देना ठीक होगा कि जीवात्मायें बहुत भारी संख्या में हैं। प्रत्येक जीव अणु मात्र (अति सूक्ष्म) है।

सब प्राणियों में एक ही जीव नहीं है। प्रत्येक प्राणी में जीव पृथक्-पृथक् हैं। सब प्राणियों के कार्य भिन्न-भिन्न होते हैं।

सुख, दुःख, हर्ष, उल्लास शरीर को नहीं होते। कारण यह कि ये जड़ पदार्थ के गुण नहीं हैं। ये आत्मा के लिंग हैं और ये सब प्राणियों को समान रूप से नहीं होते। कोई ज्वर ग्रस्त है तो किसी के सिर में पीड़ा है। किसी को एक घटना से दुःख होता है और उसी घटना से किसी अन्य को प्रसन्नता भी होती है। अतः प्रत्येक प्राणी में पृथक्-पृथक् जीवात्मा है।

इन मूल पदार्थों के विषय में हमने भारतीय विज्ञान के अनुसार लिखा है। पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रकृति से निर्मित पदार्थों की खोज में लीन, मूल प्रकृति तक पहुँच तो गये हैं। हमारा विचार है कि न्यूट्रिनोज़ (neutrino) प्रकृति के परमाणु हैं जैसे भारतीय ग्रन्थों में वर्णन किये गए हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकृति से कैसे इस जगत् की सृष्टि हुई ? इसकी एक प्रक्रिया भारतीय दार्शनिक कहते हैं। उसका एक संक्षिप्त वृत्तान्त हमने पूर्व के अध्यायों में दिया है। पाश्चात्य वैज्ञानिक तो ऊर्जा (energy) और प्रकृति में अन्तर नहीं जान सके।

भारतीय विज्ञान में ऊर्जा (energy) को तेज के नाम से स्मरण किया है। इसका दूसरा नाम प्राण है।

परमात्मा की शक्ति (तेज) ही प्रकृति के परमाणुओं (neutrinos) को सक्रिय करती है। इसी से रचना होती है। कैसे सक्रिय करती है ? यह हमने पूर्व कण्डिका में लिखा है।

कुछ लोग यह मानते हैं कि परमात्मा और प्राण एक ही हैं। परमात्मा स्वयं शक्तिस्वरूप है। यह ऐसा नहीं। कारण यह कि इस संसार में शक्ति चेतन स्वरूप नहीं है। चेतन और शक्ति में अन्तर है।

हमने बताया है कि चेतन में ईक्षण करने का गुण है। ईक्षण का अर्थ भी हमने बताया है। किसी कार्य को आरम्भ करने, कार्य को दिशा देने और कार्य का अन्त करने का निश्चय करना ईक्षण कहा गया है। प्राण, तेज अथवा ऊर्जा कार्य तो करती है, परन्तु कार्यारम्भ का निश्चय और कार्य की दिशा तथा कार्य समाप्त करने का निश्चय प्राण नहीं कर सकते। प्राण तो कर्म करते हैं।

शक्ति जिसमें संसार की रचना, प्रचलन और संहार होता है, एक ही है। इसे वैश्वानर अग्नि कहा है।

इसी वैश्वानर अग्नि से चूल्हे जलते हैं, इंजन चलते हैं। हवाई जहाज उड़ते हैं और हवाई राकेट इत्यादि अन्तरिक्ष में भेजे जाते हैं।

इस वैश्वानर अग्नि को कई मनुष्य उपकार के लिए प्रयोग करते हैं और दूसरा कोई हानि पहुँचाने के लिए भी कर सकता है। अतः यह परमात्मा नहीं। जब इसका सदुपयोग अथवा दुरुपयोग किसी अन्य की इच्छा से हो सकता है तो यह चेतन नहीं हो सकता।

अतः शक्ति शक्तिमान् से भिन्न है। परमात्मा प्राण से भिन्न है। इस पर भी परमात्मा प्राण का स्वामी है।

परमात्मा की प्राण शक्ति ही प्राणी के शरीर में कार्य करती है और उस शक्ति से प्राणी पुण्य-कर्म भी कर सकता है और पाप-कर्म भी। अतः प्राण प्राणी के परामर्श से प्रयुक्त होता है। ऐसा शास्त्रों में भी लिखा है। ब्रह्मसूत्र में जहाँ दहर स्थित परमात्मा का वर्णन किया गया है, वहाँ यह लिखा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इतरपरामर्शात् स इति चेन्नासंभवात् ।। (ब्र० सू० १-३-१८)

परमात्मा की शक्ति का उपयोग दूसरे (जीवात्मा) के परामर्श से होता है। यह असम्भव नहीं।

अतः भारतीय विज्ञान में परमात्मा और उसका तेज पृथक्-पृथक् हैं। परमात्मा अपना तेज जीवात्मा को प्रयोग के लिए देता है। जीवात्मा अपनी बुद्धि के अनुसार इसका प्रयोग करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ अध्याय

ज्ञान, भाषा और लिपि

: १ :

ज्ञान को व्यक्त करने के लिए वाक् अर्थात् भाषा की आवश्यकता होती है। ज्ञान, वाक् से पहले प्राप्त होता है। ज्ञान को प्रकट करने तथा उसके विस्तार के लिए ही वाक् की आवश्यकता होती है। जब इतना कुछ हो जाता है तो ज्ञान और भाषा को स्थायी बनाने के लिए लिपि की आवश्यकता अनुभव हुई।

प्रश्न है कि मनुष्य को ज्ञान कब प्राप्त हुआ, कब भाषा में व्यक्त किया गया और तदनन्तर कब लिपिबद्ध किया गया ?

आधुनिक वैज्ञानिक तो मनुष्य को पशुओं से उत्पन्न हुआ मानते हैं। इस विचार को विकासवाद के नाम से स्मरण किया जाता है।

विकासवाद का एक अंग तो है जड़ से चेतना का उत्पन्न होना ; दूसरा अंग है एक जन्तु-जाति से विभिन्न जन्तु-जातियों का आविर्भाव और तीसरा अंग है मनुष्य का पशुवत् अवस्था से सभ्य मनुष्य बनना।

प्रायः वैज्ञानिक विकासवाद के पूर्वोक्त तीनों अंगों को ठीक मानते हैं। कुछ अपवाद भी हैं। परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। इसमें कारण यह है कि आधुनिक वैज्ञानिक परमात्मा तथा आत्मा के अस्तित्व को स्वीकार किये बिना अपनी खोज को चलाते हैं। जब अपनी खोज में अपने को अवरुद्ध पाते हैं तो फिर कल्पना के घोड़े दौड़ाने लगते हैं और वह प्रायः गलत होते हैं।

प्रायः युरोपियन वैज्ञानिक मानते हैं कि आदि मनुष्य (primitive man) वर्तमान मनुष्य से बहुत घटिया था। उसका मस्तिष्क एक वनचर जन्तु जैसा था। ऐसे जन्तु को वे वनमानुप कहकर स्मरण करते हैं।

यह भी कहा जाता है कि आदि मानव चारों पाँव (हाथ-पाँव) के बल पर चलता था। जब इसका मस्तिष्क उन्नत हुआ तब यह सीधा पाँव के बल खड़ा हो चलने लगा।

विकासवाद के पहले अंगों के विषय में हम लिख चुके हैं। वहाँ हमने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय मान्यता का वर्णन किया है। उसके ठीक होने में प्रमाण और युक्तियाँ दी हैं।

यहाँ हम मानव विकास की बात, जो विकासवाद का तीसरा अंग है, का वर्णन करेंगे। इस प्रसंग को अंग्रेजी भाषा में मानव विकास का विज्ञान (Anthropology) कहते हैं।

इस विद्या का वर्णन इस प्रकार है—

Physical anthropology is concerned with the related problems of tracing the emergence of man as an animal and the nature, causes and significance of past and present variations in the biological characters of the various human species and breeds. (Enc. Brit. Ed. 1967 Vol. 2. p.38b.)

इसका अर्थ है—शारीरिक ऐन्थ्रोपोलोजी उन समस्याओं से सम्बन्ध रखती है जिनसे मनुष्य का जन्तु की भाँति आविर्भाव हुआ और उसके स्वभाव, कारणों तथा सार्थकता, जिससे भूतकाल और वर्तमान के परिवर्तन हुए और विभिन्न मानव जातियाँ तथा नस्लें बन गयी हैं।

ऐन्साइक्लोपीडिया में एक अन्य स्थान पर यह भी लिखा है—

From the point of view of the biologist, the problem of the evolutionary origin of man is only one of the many problems of mammalian evolution ; for, in his physical structure and physiological functions, man falls within the biologists, definition of mammal, and thus may be presumed to be the product of an evolutionary process similar to that which is now known from the fossil record to have occurred with other groups of mammals.

(Ibid. Vol. 14, p. 731 d.)

अर्थात्—जीव-विज्ञानवेत्ताओं के मत से मनुष्य के विकास और अनुभव की समस्या उन समस्याओं में से एक है जो स्तनपायी जन्तुओं के विकासीय विषय पर बनती है। इसमें कारण यह है कि इसके शरीर की बनावट के तथा इसकी शरीर क्रियाओं के विचार से मनुष्य स्तनपायी के लक्षणों में आता है। अतः यह माना जा सकता है कि यह भी उसी विकास क्रिया की उपज है जो स्तनपायी जन्तुओं में हुआ जिसका भूमि में दबे कंकालों के ज्ञान से पता चलता है।

इस कथन में तो लेखक यह मानता प्रतीत होता है कि मनुष्य भी उसी विकास क्रिया से निर्मित हुआ है जिसे वैज्ञानिक अन्य जन्तुओं में ठीक मानते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु इसी लेख में वहां लेखक यह भी लिखता है—

Not even anthropologists always employ the terms 'man' and 'human', consistently but the main difficulty is that they are terms that in ordinary usage which are commonly taken to imply very much more than the meaning attached to them by anatomists and biologists when they are considering man only in a strictly anatomical or biological sense. It is, in fact, almost impossible to give a satisfactory definition of man that will satisfy all achools of philosophy. The anatomist is not qualified as anatomist to define man as *M. A. N*, he is competent only within his own special field of study to define man in anatomical terms as one of the species of the animal world.

(Enc. Brit. Ed. 1967 Vol. 14 page 732 b.)

अर्थात् ऐन्थ्रोपौलोजिस्ट (मानव-शास्त्री) भी सदा मनुष्य और मानवता के शब्द एक ही अर्थ में प्रयोग नहीं करता। मुख्य कठिनाई यह है कि ये शब्द सामान्य व्यवहार में उन अर्थों में लिये जाते हैं, जो उनसे बहुत अधिक अर्थ वाले हैं जो शरीर-शास्त्री और जन्तु-शास्त्री इनके लगाते हैं, जब वे मनुष्य को केवल शरीर अथवा एक जन्तु के अर्थों में लेते हैं। वास्तव में मनुष्य के ठीक-ठीक लक्षण करने अत्यन्त कठिन हैं। एक शरीर-शास्त्री शरीर ज्ञाता के रूप में इस योग्य नहीं कि वह मनुष्य (man) के लक्षण करे। उसकी योग्यता इतनी ही है कि वह अपने विषय के अन्तर्गत रहता हुआ मनुष्य को शरीर और संसार की जन्तु-जातियों में से एक माने।

यथार्थ बात यह है कि वर्तमान विज्ञान, विशेष रूप में प्राणी सम्बन्धी विज्ञान अधूरा है। कारण यह है कि प्राणी रासायनिक पदार्थों के अतिरिक्त भी अपने में कुछ रखता है।

इस कारण जब एक आधुनिक वैज्ञानिक मनुष्य के विकास की बात करता है तो उसकी हड्डियाँ और पेशियाँ गिनने लगता है।

यही कारण है कि जब ज्ञान की बात आती है तो वैज्ञानिक विकासावद की आड़ में खड़ा हो आँखें मूंद बातें करने लगता है।

इसी प्रकार के घेरों में घिरा हुआ एक समाज-शास्त्री मानव में सामाजिकता के विकास का होना इस प्रकार मानता है—

The emergence of capacity for social life is an aspect of the growth of self-hood, of personality. The child does not merely imitate the social usages of adults, as a parrot might pick up a

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

language. He is certainly imitative, but in the process of imitation his own social nature is gradually developed.

(R. M. Maciver & Charles in 'Society' p. 46)

अर्थ है—

(मनुष्य में) समाजिकता का आविर्भाव उसमें स्वत्व और व्यक्तित्व के विकास का एक पक्ष है। बच्चा बड़ों की केवल नकल ही नहीं करता; जैसे एक तोता भाषा सीख जाता है। यह नकल तो उतारता है, परन्तु नकल उतारने में उसका अपना व्यक्तित्व भी प्रकट होता है।

परन्तु वह व्यक्तित्व क्या है और वह स्वत्व क्या है और ये उसमें कहाँ से आये? यह समाज-शास्त्री समझ नहीं सका। इसमें कारण यह है कि वह मनुष्य के शरीर के अतिरिक्त जीवात्मा का अस्तित्व नहीं मानता।

भारतीय वैज्ञानिक और दार्शनिक मनुष्य को इस प्रकार नहीं मानते। वे विकासवादियों की भाँति जन्तु-जातियों में परिवर्तन हुआ नहीं मानते। न ही वे मनुष्य में व्यक्तित्व और उसका स्वत्व उसके शरीर की उपज मानते हैं। वे जीवात्मा के अस्तित्व को मानते हैं जो अपने पूर्व जन्म के संस्कारों को लिये हुए वर्तमान जीवन में आता है। वे संस्कार ही उसमें स्वत्व और व्यक्तित्व उपस्थित करते हैं।

आत्मा जो संस्कारों को अपने साथ लेकर वर्तमान जीवन में आता है उससे उन्नति अथवा अवनति इस जन्म में करता है। इसको करने की उसे स्वतन्त्रता प्राप्त है। इसी को भगवद्गीता में "कर्मण्येवाधिकारस्ते" से प्रकट किया गया है।

इस आगे बढ़ने अथवा पीछे हटने के लिए ही ज्ञान की आवश्यकता है। यह ज्ञान मनुष्य इस संसार में माता-पिता और आचार्य से प्राप्त करता है।

शतपथ ब्राह्मण में यह लिखा है—

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद।

मनष्य को ज्ञानवान बनाने के लिये माता-पिता और आचार्य की सहायता की आवश्यकता होती है।

हमारे सामने प्रश्न यह है कि आदि मनुष्य को किसने ज्ञान दिया? भारतीय दार्शनिक यह मानते हैं कि आदिकाल में मनुष्य युवा-युवतियों के रूप में उत्पन्न हुआ। उस समय उसके माता-पिता और आचार्य भी नहीं थे। तब वह जीवन निर्वाह करने योग्य कैसे हुआ? वह सामाजिक जीव किसकी शिक्षा से बना?

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri

भारतीय परम्परा है कि आदि मनुष्य को मूल ज्ञान जिससे वह पशु से ऊँचा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवन व्यतीत कर सका, परमात्मा ने दिया था।

यहाँ इतना समझ लेना चाहिए कि जहाँ तक शारीरिक आवश्यकताओं का सम्बन्ध है वह मनुष्य ऐसे ही सीख गया जैसे पशु बिना किसी के सिखाये सीख जाते हैं। यह नीति-शास्त्र का वचन है—

आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिः नराणाम् ।

अर्थात् खाना, सोना, डरना और मैथुन मनुष्यों और पशुओं में समान रूप से चलते हैं। ये तो मनुष्य प्रकृति से प्रेरित बिना किसी के सिखाये ही सीख गया, परन्तु समाज में रहने योग्य मनुष्य तो तब हुआ जब इस पशु से अधिक ज्ञान देने वाला कोई था। आदि सृष्टि में माता-पिता और आचार्य नहीं थे। इस कारण भारतीय परम्परा है कि आदि मनुष्य को ज्ञान परमेश्वर ने दिया।

इसमें वेद प्रमाण है। वेद में लिखा है—

यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा ।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम ॥
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति ।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु ॥

(ऋ० ८-१००-१०,११)

अर्थात्—जो वाणी तेजस्वी (प्रभावयुक्त) अति सुखप्रद निगूढ़ अर्थों को कहती है, देवताओं में विराजती है, वह चारों दिशाओं में ऊर्जा के रूप में बरसती है। इस वाणी का परम स्थान (स्रोत) कहाँ विद्यमान है? वह दिव्य अर्थयुक्त वाणी प्रकट की जाती है देवताओं से। उसको सब प्रकार के ज्ञान-द्रष्टा कहते हैं। यह सुखदायिनी अन्तरिक्ष की ऊर्जा गौ के समान दुही जाती है। वह वाणी उत्तम प्रकार से कही जाती हुई हमें प्राप्त हो।

इन वेद मन्त्रों में यह कहा गया है कि वाणी परमात्मा से अन्तरिक्ष के देवताओं को मिली और वहाँ से भूतल पर के विद्वान द्रष्टाओं द्वारा मनुष्यों को सुख देने के लिये मनुष्यों को मिली।

एक अन्य मंत्र में भी यही कुछ स्पष्ट किया गया है—

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत् प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत् प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥

(ऋ० १०-७१-१)

अर्थात्—हे ज्ञान के स्वामी परमात्मा, सबसे पहले वेद वाणी के श्रेष्ठ पद समूह को प्राप्त कर उसका ऋषि-मुनि प्रचार करते हैं। जो इनमें श्रेष्ठ होते हैं उनके गुहा स्थान में इस (ज्ञान) का आविर्भाव होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अभिप्राय यह है कि सबसे पहले परमात्मा मनुष्यों के मस्तिष्क की गुहा में बैठा हुआ ऋषि-मुनियों को यह सुख की वाणी देता है और वे लोग इसका सामान्य मनुष्यों में प्रचार करते हैं।

ऐसा आदि सृष्टि में हुआ है। यह भी वैसे ही अनुमान प्रमाण से सिद्ध किया जा सकता है जैसे परमात्मा, जीवात्मा और मूल प्रकृति का अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता है।

अनुमान इस प्रकार लगाया जाता है कि यदि किसी बालक को माता-पिता तथा समाज के प्रभाव से वंचित कर दिया जाये तो देखा गया है कि वह मूर्ख और उजड्ड ही रहा है।

अपने आप तो किसी बच्चे को समाज से पृथक् कर देना अपराध है, परन्तु ऐसी घटनाएँ हुई हैं कि जब कोई बालक शिशुकाल से ही समाज के प्रभाव से रहित कर दिया गया। ऐसे बालकों के कई ऐतिहासिक प्रमाण मिलते हैं।

निम्न तीन उदाहरण हम यहाँ देते हैं—

1. The famous case of Kasper Hauser is peculiarly significant because this ill-starred youth was in all probability bereft of human contacts through political machinations and, therefore, his condition when found could not be attributed to a defect of innate mentality. When Hauser, at the age of seventeen, wandered into the city of Nuremburg in 1828, he couldly walk, had the mind of an infant and could mutter only a meaningless phrase or two. Sociologically it is noteworthy that Kasper mistook inanimate subjects for living beings. And when he was killed five years later, a post-mortem revealed the brain development to be abnormal.

2. One of the most interesting feral cases involves two Hindu children who at the ages respectively of about eight and under two, in 1920, were discovered in a wolf den. The younger child died within a few months of discovery, but the elder, Kamla, as she became named, survived untill 1929, and her history in human society has been carefnlly recorded. Kamla brought with her almost none of the traits that we associate with human behaviour. She could walk only on all fours, possessed no language, save wolf like growls, and was as shy of humans as was any other undomesticated animal. Only as the

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

result of most careful and apparently sympathetic training, was she taught rudimentary social habits...before her death she had slowly learned some simple speech, human eating and dressing habits and the like.

3. More recently sociologists and psychologists have studied the case of Anna, an illegitimate American child who had been placed in a room at age of six months and isolated there until her discovery five yaers later in 1938. During her confinement Anna was fed little else than milk, received no ordinary training and had almost no contact with other beings. This extreme and cruel social isolation which provides the scientist one more laboratory case, left the child with few of the attributes of the normal five year-old. When Anna was discovered she could not walk or speak. She was completely apathetic and indifferent to people around her.

R.M. Maciver and Charles in Society p. 44-45.

इसका अर्थ इस प्रकार है—कैस्पर हाऊज़र का विख्यात मामला विशेष रूप में उल्लेखनीय है। यह भाग्यहीन युवक राजनीतिक कारणों से मानव समाज से पृथक् कर दिया गया। अतः उसकी अवस्था, जब वह पाया गया तो इस कारण नहीं कही जा सकती थी कि उसके मस्तिष्क में कोई नैसर्गिक दोष था। जब सत्रह वर्ष की आयु में सन् १८२८ में वह न्यूरम्बर्ग नगर की सड़कों पर भटकता हुआ पाया गया तो वह चल नहीं सकता था, बच्चों की सी मानसिक अवस्था रखता था और एक-दो अर्थहीन शब्द ही बड़बड़ा सकता था। यह उल्लेखनीय है कि वह जड़ पदार्थों को जीवित मानता था। पाँच वर्ष उपरान्त जब वह मार डाला गया तो उसकी शव परीक्षा के समय यह देखा गया कि उसका मस्तिष्क विकासहीन था।

(२) समाज की संगत से वंचित रहने का अति रुचिकर मामला दो हिन्दू लड़कियों का है। एक लगभग आठ वर्ष की और दूसरी दो वर्ष से कम आयु की थी। ये सन् १९२० में भेड़ियों की एक गार में पायी गयी थीं। छोटा बच्चा पाये जाने के कुछ ही महीने बाद मर गया, परन्तु बड़ी लड़की कमला सन् १९२९ तक जीवित रही। मनुष्य समाज में इसके जीवन का इतिहास लिखा गया है। कमला अपने साथ वैसे कोई लक्षण लेकर नहीं आयी जो मानव व्यवहार से सम्बन्धित कहे जाते हैं। वह चारों हाथ-पाँव के बल पर चलती थी, कोई भाषा, भेड़ियों के से गुर्राने के अतिरिक्त नहीं जानती थी। यह मनुष्यों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलने में इतना ही संकोच करती थी जितना कि कोई जंगली जानवर करता है। बहुत ध्यानपूर्वक और सहानुभूति से शिक्षा देने के उपरान्त भी मरने तक बहुत कठिनाई से प्रारम्भिक सामाजिक व्यवहार और कुछ कपड़े पहनने सिखाये जा सके थे।

(३) अभी-अभी समाजशास्त्रियों और मनोवैज्ञानिकों को एक ऐन्ना लड़की का मामला अध्ययन के लिये मिला है। यह एक जारज अमेरिकन लड़की थी। यह छः मास की अवस्था की थी जब एक पृथक् कमरे में रख दी गयी थी और पाँच वर्ष पीछे तक, जब वह १९३८ में पायी गयी, समाज से पृथक् रही। इस बन्दी जीवन में इसे दूध के अतिरिक्त कुछ नहीं मिला, कोई शिक्षा नहीं मिली और वह अन्य किसी के सम्पर्क में नहीं आई। अत्यन्त निर्दयता से पृथक् रखी गयी। यह लड़की वैज्ञानिकों के लिये एक प्रयोगशाला का परीक्षण बन गयी। लड़की में सामाजिकता के लक्षण लगभग नहीं थे। वह चल नहीं सकती थी। न ही बोल सकती थी। वह अपने आस-पास के लोगों से सर्वथा अप्रभावित और उदासीन रहती थी।

इन उदाहरणों में एक-दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक यह कि कैस्पर हाऊज़र के मरने पर उसकी शव परीक्षा पर पता चला कि उसका मस्तिष्क अविकसित था। इसका अर्थ यह है कि मस्तिष्क के विकसित होने में लाखों वर्ष नहीं लगते। जब एक जीवन के कुछ ही वर्ष में मस्तिष्क अविकसित रह सकता है तो यह थोड़ी शिक्षा से विकास भी पा सकता है।

दूसरी बात यह देखने में आती है कि जीवन में यदि एक आयु विशेष में कुछ न सिखाया जाये तो फिर मनुष्य सीख नहीं सकता। इनमें, इसी समाज-शास्त्री के कथनानुसार नकल कर और उसमें अपने स्वत्व (selfhood) और व्यक्तित्व (personality) से जोड़ने की बात दिखायी नहीं दी।

अभिप्राय यह कि बिना सिखाये मनुष्य कुछ भी सीख नहीं सकता और यदि आदि मनुष्य को समाज में रहने का ढंग सिखाया नहीं जाता तो वह पशु के से व्यवहार ही सीख सकता। मानवोचित व्यवहार वह नहीं सीख सकता था।

इसी प्रकार के परीक्षणों से भारतीय मनोवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों का परिणाम है कि मानव को मानव समाज का अंग बनाने के लिये उसको ईश्वरीय ज्ञान की आवश्यकता रही है। वह स्वयं कुछ भी सीख नहीं सकता।

जो ज्ञान आदि मनुष्य को वेद से मिला, वही परम्परागत् मानव समाज में चला आता है। मूल रूप में उस ज्ञान में वृद्धि नहीं हुई, वरन् मनुष्य कुछ भूला ही है। हाँ, उस ज्ञान पर कारीगरी (technology) में उन्नति हुई है। कुछ भूली हुई बातें मनुष्य ने पुनः प्रतीत की हैं। नया कुछ नहीं पता चला।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: २ :

वेद-ज्ञान

पूर्व की कण्डिका में हमने बताया है कि बिना किसी द्वारा ज्ञान दिये मनुष्य ज्ञानवान नहीं हो सकता। वर्तमान युग का कहा जाने वाला उन्नत मस्तिष्क जब परम्परागत ज्ञान से वंचित हो जाता है तो वह अविकसित रह जाता है। जब परंपरागत ज्ञान पा जाता है तभी वह उस ज्ञान पर अपनी कलाकृति कर सकता है। इस कथन का प्रमाण यह है कि वर्तमान उन्नति प्रायः कलाकृति ही है। कुछ सिद्धान्तात्मक मूल सत्यों का भी पता किया गया है, परन्तु वे मूल सिद्धान्त पहले भी विदित थे। भले ही उन सिद्धान्तों पर कलात्मक विकास न हो सका हो।

कुछ ही सिद्धान्तात्मक मूल सत्यों का यहाँ उल्लेख किया जा सका है। स्थानाभाव के कारण कुछ अधिक विषयों पर नहीं लिखा जा सकता। उदाहरण के रूप में ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र को ही लें तो पता चलेगा कि क्या कुछ वेद में लिखा है और उससे अधिक आज क्या पता किया गया है।

मन्त्र है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्। (ऋ० १-१-१)

हम लोग अग्नि (ऊर्जा) की स्तुति (गुण, कर्म, स्वभाव का चिन्तन) करते हैं। यह (सृष्टि-रचना से भी) पूर्व में बार-बार हितकारी कार्य कर रही थी। वह (ऊर्जा) अब यज्ञ (सर्व कल्याणकारी) कार्यों में योगदान देती है। जो इस (अग्नि) का ग्रहण करनेवाला है अर्थात् इसके गुण, कर्म और स्वभाव को जान लेता है, वह पृथिवी पर धन-सम्पदा को प्राप्त कर सकता है।

अग्नि ऊर्जा है। जगत्-रचना से पहले यह उपस्थित थी। तब भी वह रचना-कार्य कर रही थी। यह रचना-कार्य बार-बार होता है। यह रचना-कार्य सब जीवात्माओं के हित में है। जीवात्मा इस जगत् में आकर अपने मोक्ष के अंश को प्राप्त कर सकता है। (ऋ० १-१६४-२१)

अतः जगत् की रचना जीवों के कल्याण के लिये है। इसी कारण अग्नि को यज्ञस्य (सर्व-कल्याण-कार्य के लिये) कहा है।

अब एक अन्य मन्त्र लें—

दिव्यो गन्धर्वो भुवनस्य यस्पतिरेक एव नमस्यो विक्ष्वीड्य।
तं त्वा यौमि ब्रह्मणा दिव्य देव नमस्ते अस्तु दिवि ते सधस्थम्॥

(अथर्व० २-२-१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—(दिव्य) प्रकाशमान ज्ञानस्वरूप (गन्धर्व) सब गतिशील पदार्थों को धारण करनेवाला, भुवनों का पति, वह एक ही है। समस्त लोगों के स्तुति और नमस्कार करने योग्य है। उस (परमात्मा) से (मनुष्य) वेद-वाणी को प्राप्त होते हैं। वह (दिव्य) विद्वानों से नमस्ते कहा जाता है। तेरा ही संग मुझे प्राप्त हो।

इस मन्त्र का भावार्थ यह है कि परमात्मा पूर्ण ज्ञान का स्वामी है। जितने भी गतिशील पदार्थ हैं—सूर्य, नक्षत्र, ग्रह इत्यादि और वाणी को परमात्मा धारण अर्थात् नियन्त्रण में रखता है। इस परमात्मा को सब विद्वान लोग नमस्कार करते हैं।

एक अन्य मन्त्र लें—

पतङ्गो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽवदद् गर्भे अन्तः।
तां द्योतमानां स्वर्यं मनीषामृतस्य पदे कवयो नि पान्ति॥

(ऋ० १०-१७७-२)

अर्थ है—आत्मा वाणी को मन से धारण करता है। वाणी को धारण करने वाला गन्धर्व कहलाता है। वह गर्भ में ही (भीतर ही भीतर जीवात्मा से) बोलता है। उस तेजस्वी वाणी के अर्थ को ऋषि लोग ऋत् के पदों से सुरक्षित करते हैं।

इस मन्त्र का भावार्थ है कि आत्मा ज्ञान ग्रहण करता है मन द्वारा। मन अपना ज्ञान आत्मा को देता है और यदि यह आत्मा ऋषि पद पर पहुँचा हुआ हो तो ज्ञान को मनन कर उसका प्रसार करता है और वेद-मन्त्रों में सुरक्षित करता है।

ये कुछ ही मन्त्र दिये हैं। उनको समझकर उन पर चिन्तन करने से बुद्धि का विकास होता है। एक वार बुद्धि का विकास हो जाये तो फिर यह सामाजिकता सुलभ हो जाती है। शेष कार्य तो बुद्धि के विकास से स्वतः होने लगते हैं।

वैसे तो वेदों में विवाह कर्म, गृह निर्माण, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद इत्यादि मूल ज्ञान के विषयों पर सैद्धान्तिक कथन हैं।

ऋषि लोग तो परमात्मा के ज्ञान को जन-मानस को देने के लिये सदा उपस्थित नहीं रहते। इस कारण मनुष्य प्रायः वेद-ज्ञान को भूल जाता है अथवा उसका अर्थ समझने में प्रमाद करने लगता है। तब मनुष्य में ह्रास होने लगता है।

यही कारण है कि मानस के उद्गम स्थान से जब मनुष्य दूर-दूर जाने लगे तो वे न तो ज्ञान से सम्पर्क रख सके और न ही ज्ञान को भली-भाँति स्मरण रख सके। तब ह्रास उत्पन्न हुआ और उसका प्रमाण हम देख रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ एक शुद्ध विज्ञान (pure sciences) में खोज-कार्य करनेवालों ने पुनः कई सत्य सिद्धान्तों को खोज निकाला है। उसके आधार पर ही तकनीकी (technological) उन्नति हुई है। परन्तु ज्ञान के नाम पर अज्ञान की सृष्टि भी हुई है। उसने मानवों में अनेक प्रकार की विषमताएँ उत्पन्न की हैं।

: ३ :

वाणी

जब यह माना गया कि आदि मनुष्य जो भूतल पर उत्पन्न हुआ, सब प्रकार से वर्तमान मनुष्य के समान था, तब यह भी मानना आवश्यक हो गया कि उसे जीवन चलाने के लिए ज्ञान प्राप्त हुआ था।

धीरे-धीरे परीक्षा और अस्वीकार (test and reject) की प्रक्रिया से उन्नति की कल्पना तब ही की जा सकती है जब विकासवाद को स्वीकार किया जाये। विकासवाद को स्वीकार करने के लिए जन्तु-जाति के परिवर्तन के सिद्धान्त को मानना पड़ेगा; परन्तु यह युक्ति और प्रमाण से सिद्ध नहीं हो सकता।

ज्ञान बिना किसी देने वाले के असम्भव है। यह हम पूर्व की कण्डिका में वर्णन कर आये हैं कि मनुष्य आज भी बिना किसी के सिखाये कुछ भी सीख नहीं सकता।

भारतीय परम्परा है कि आदि सृष्टि में जब पृथिवी पर ऋषि उत्पन्न हुए तो परमात्मा ने ज्ञान मनुष्य मात्र के लिए दिया। परन्तु ज्ञान निरर्थक होता यदि मनुष्य को भाषा न आती। अतः ऋषियों ने ईश्वरीय ज्ञान के साथ भाषा भी मनुष्यों को सिखायी।

वेद में यह कहा है—

सक्तुमिव तितउना पुनन्तो यत्र धीरा मनसा वाचमक्रत।
अत्रा सखायः सख्यानि जानते भद्रैषां लक्ष्मीर्निहिताधि वाचि॥
यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन्नृषिषु प्रविष्ठाम्।
तामाभृत्या व्यदधुः पुरुत्रा तां सप्त रेभा अभि सं नवन्ते॥

(ऋ० १०-७१-२,३)

जैसे सत्तू को छलनी से छानकर भूसा पृथक् कर लेते हैं उसी प्रकार (धीरः) बुद्धिमान मनुष्य मन में मनन किये ज्ञान से वाणी को पवित्र कर उसका प्रयोग करते हैं। तब उस वाणी में परस्पर प्रेम भाव से युक्त मित्र वर्ग मैत्री के भाव को

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जानते हैं। उनकी वाणी में भलाई और सम्पन्नता आ जाती है। ऋषि लोग वाणी के एक-एक पद की परस्पर संगति से ही ज्ञान प्राप्त करते हैं। प्रविष्ट वाणी से वे (ऋषिगण) बहुत से स्थलों पर विविध प्रकार से उपदेश करते हैं। उसी से वे सातों छन्दों को कहते हैं।

यह है प्रक्रिया जिससे परमात्मा का दिया ज्ञान, परमात्मा से दी गयी वाणी से विस्तार पाता है। अभिप्राय यह है कि ज्ञान और वाणी परमात्मा द्वारा ही दी गयी है। वाचः का अर्थ आवाज, शब्द नहीं। इसी कारण लिखा है कि पद-पद करके यह ऋषियों को प्राप्त होती है और वे इसको छलनी से सत्तू छानने के समान साफ करते हैं और लोगों को भिन्न-भिन्न विचार भिन्न-भिन्न ढंग से प्रकट करते हैं।

परमात्मा ज्ञान मन में देता है। मन में मनन कर ऋषि लोग ज्ञान को पद-पद कर वाणी में कहते हैं, छन्दों में बोलते हैं।

भारतीय परम्परा यह है कि ज्ञान की भाँति वाणी भी मनुष्य को परमात्मा द्वारा मिली है। इतर् जीव-जन्तु इस सामर्थ्य को नहीं रखते।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि ज्ञान और वाणी का कथन तो है, परन्तु लिपि का नहीं। लिपि (script) परमात्मा की ओर से नहीं मिली। ज्ञान और भाषा ही परमात्मा की देन है।

प्रथम भाषा जो मनुष्य को मिली, वह वेदों की भाषा ही है। यह प्राचीनतम भाषा सर्वोत्कृष्ट है। परन्तु लिपि की रचना पीछे मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए की है; अतः प्राचीनतम लिपि सबसे घटिया थी।

लिपि ने उत्तरोत्तर उन्नति की है, परन्तु भाषा समय व्यतीत होने के साथ ह्रास को प्राप्त हुई है।

लिपि की उन्नति भी एक उत्कृष्टता को पहुँच अब ह्रास को प्राप्त होने लगी है। इसमें कारण है।

जब तक मनुष्य लिपि को भाषा की अभिव्यक्ति के लिए प्रयोग करता रहा, इसमें उन्नति होती रही। परन्तु जब लिपि मनुष्य की सुविधा के लिए साधन बनी तो इसमें ह्रास उत्पन्न होना आरम्भ हो गया। मनुष्य की उच्चारण की क्षमता में ह्रास होने से उच्चारणों की संख्या कम हुई तो अक्षर भी कम होने लगे।

अर्थयुक्त भाषा का आविर्भाव उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार वेद में लिखा है।

पाश्चात्य विद्वान भाषा के आरम्भ के विषय में अनिश्चित मत हैं। एक भाषा-विज्ञ लिखता है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

After much futile discussion linguistics have reached the conclusion that the data with which they are concerned yield little or no evidence about the origin of human speech.

(Adger Sturtivent of Columbia University. Qtd. by Pt. Bhagwaddatta in 'Bhasha Ka Itihas' p. 2.)

अर्थ है—बहुत व्यर्थ के बाद-विवाद के उपरान्त भाषाविद् इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि इस विषय में प्रस्तुत सामग्री भाषा की उत्पत्ति के विषय में कोई साक्ष्य उपस्थित नहीं करती।

यही विचार अन्य भाषाशास्त्रियों के भी हैं। इटली के एक विद्वान मेरियो पाई लिखते हैं :

If there is one thing which all linguists are fully agreed, it is that the problem of the origin of human speech is still unsolved.

(Qtd. by Pt. Bhagwaddatta in 'Bhasha Ka Itihas' p. 2.)

अर्थात् यदि कोई एक बात है जिस पर सब भाषाविद् पूरे सहमत हैं तो वह यह है कि मानव बोली की उत्पत्ति की समस्या अभी तक सुलझी नहीं।

अमेरिका के जे० वैण्ड्रियस अपनी पुस्तक 'Language' १९५२ में पृ० ३१५ पर लिखते हैं—

the problem of the origin of language does not admit of any satisfactory solution. (Ibid. p. 2.)

इनमें दो बातें ध्यान देने योग्य हैं। एक तो यह कि सब पुस्तकें जिनसे ये उद्धरण लिये गए हैं, बहुत पुरानी नहीं हैं। दूसरे, इनके लिखने वाले प्रतिष्ठित भाषाशास्त्री हैं।

साथ ही यह भी सिद्ध होता है कि इन विद्वानों का मुख विकासवाद ने बन्द कर रखा है और वे विकासवाद के विकल्प पर विचार करने को भी तैयार नहीं होते। विकावाद एक काल्पनिक मत है जो न तो युक्ति से सिद्ध है और न ही प्रमाण से। इस पर भी इसने पाश्चात्य विद्वानों के मस्तिष्क को घेर रखा है।

मनुष्य की सामर्थ्य उन्नत नहीं हो रही। यह काल व्यतीत होने के साथ साथ ह्रास को प्राप्त हो रही है। विकासवाद के अनुसार यह उन्नत होनी चाहिये, हीन सामर्थ्य वाले विनष्ट हो जाने चाहिएँ। इसी से हम कहते हैं कि विकासवाद एक असिद्ध सिद्धान्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जितनी भी ईश्वर प्रदत्त उपलब्धियाँ हैं, उनमें मनुष्य जितना वेद-ज्ञान से दूर होता जाता है, उतना ही ह्रास को प्राप्त होता जाता है।

श्री योगिराज अरविन्द इस विषय में अपने विचार इस प्रकार प्रकट करते हैं—

The greater the symmetry and unconscious scientific regularity, the more ancient the stage of the language. The advanced stages of language show an increasing detrition, deliquescence, caparious variation, the loss of useful sounds, the passage, sometimes transitory, sometimes permanent, of slight and unnecessary variations of the same sound to the dignity of separate letters.

Qtd. by Pt. Bhagwaddatta in 'Bhasha Ka Itihas' p. 3. from 'Essays On Language' p. 48.

इसका अर्थ है कि जिस भाषा में अधिक सन्तुलन और स्वत: वैज्ञानिक नियमितता देखी जाती है, वह भाषा उतनी ही पुरानी मानी जाती है। आधुनिक भाषाओं में अधिक और अधिक ह्रास दिखाई देता है। अपभ्रंशता, अकारण, रूपान्तरण, उपयोगी उच्चारणों का लोप, कभी अस्थायी रूप में और कभी स्थाई रूप में, एक उच्चारण का भिन्न अनावश्यक रूप स्वीकार होना और उनके लिए नये अक्षरों का निर्माण अर्वाचीन भाषाओं में देखा जाता है।

जे० वैण्ड्रियस अपनी पुस्तक 'Languages' लिखता है—

But the oldest known languages the 'parent languages' as they are sometimes called have nothing of the primitive about them.

(Ibid. p. 3.)

अर्थात्—प्राचीनतम ज्ञात भाषाएं जिन्हें बहुधा मूल भाषाएं कहते हैं, अपने में प्राक्-कालिकता नहीं रखतीं।

वैण्ड्रियस विकासवाद पर संदेह प्रकट कर रहा है। इसी प्रकार ई० ईशवर (एक जर्मन भाषाशास्त्री) ने एक ग्रन्थ ही इस विषय पर लिखा है। ग्रन्थ का नाम है—The Language and Evolution Theory.

यह विद्वान कह रहा है कि भाषा-विज्ञान डार्विनिज्म को अशुद्ध सिद्ध करता है।

एक बात तो स्पष्ट है कि भाषा के यूरोपियन विद्वान भाषा की उत्पत्ति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय में कुछ नहीं जानते। इस पर भी इतना तो वे मानते है कि प्राचीन भाषाएँ अधिक समृद्ध और सुव्यवस्थित हैं।

वेद की भाषा सबसे पुरानी है और यह सबसे समृद्ध, सुव्यवस्थित और भाव-पूर्ण है।

कुछ पाश्चात्य पद्धति के विद्वान यह मानने लगे हैं कि एक प्राचीन भाषा रही है जो यूरोपीय और एशियाई भाषाओं की माँ है। उसे ये लोग 'इण्डो-यूरोपियन' (भारोपीय) भाषा कहते हैं।

ये लोग इस भाषा का कोई ग्रन्थ नहीं बता सकते। न ही इसका कोई प्रमाण देते हैं। इस भाषा का अस्तित्व मानने में वे युक्ति यह देते हैं कि यूरोपियन और एशियाई भाषाओं में सांझे शब्द मिलते हैं। ये कहते हैं कि इस कारण दोनों की कोई 'माँ' भाषा होनी चाहिए।

वास्तव में ये लोग सत्य के निकट पहुँच गये हैं। परन्तु सत्य को मुख से स्वीकार करने से डरते है; क्योंकि ऐसा करने से इनको वेद की भाषा को मिश्र, मैसापटोमियाँ, सुमेर इत्यादि भाषाओं से पहले का मानना पड़ेगा।

वह भारोपीय (इण्डो-यूरोपियन) भाषा वेद-भाषा ही है। इसी से भूमण्डल की सब भाषाएँ निकली हैं। ये मानते हैं कि सैमेटिक भाषाएँ भी भारोपीय भाषा से ही निकलीं हैं, परन्तु मजहब और जातीय हठधर्मी के कारण ये उस भाषा को वेद-भाषा मानने से डरते हैं।

परन्तु वे बता नहीं सकते कि वह भाषा जो इतनी भाषाओं की माँ है, कहाँ बोली जाती थी, कैसे बोली जाती थी, उसके लक्षण कहाँ मिलते हैं?

: ४ :

लिपि

भारतीय मान्यता यह है कि ज्ञान और भाषा (वाणी) तो परमात्मा की देन है। इन दोनों का परस्पर सम्बन्ध है। ये एक दूसरे के आश्रय हैं। परन्तु लिपि की समस्या पृथक् है। यह मनुष्यकृत है। मनुष्य ने अपनी आवश्कताओं का अनुमान लगा इसका आविष्कार किया है।

ब्राह्मी लिपि तो उन लोगों ने कल्पना की प्रतीत होती है जो वैदिक ज्ञान से अधिक सामीप्य रखते थे। मिश्र की चित्रों वाली लिपि और सुमेर की लिपि भी ऐसी ही है। लिपि की कल्पना करने के समय इनका वेदों से सीधा सम्बन्ध नहीं रहा था। अतः वे ब्राह्मी लिपि से लाभ नहीं उठा सके।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुरातत्त्व शोध संस्थान जोधपुर के भूतपूर्व संचालक डॉक्टर फतेहसिंह एम० ए०, डी० लिट्०, ने सिंधी लिपि के विषय मे बहुत परिश्रम से खोज की है और उनकी खोज से ऐसा प्रतीत होता है कि मिश्री लिपि, सुमेर और मैसापटोमिया की लिपियाँ तथा सैमेटिक लिपियाँ सबकी सब वैदिक भाषा के आधार पर बनी हैं। कुछ अधिक समीप का ज्ञान रखने से धीरे-धीरे ब्राह्मी तदनन्तर देवनागरी लिपि में मर्जित हो गयी हैं और कुछ दूर होने के कारण मिश्री, सिंधी, सुमेर इत्यादि से चलकर हैब्रयू और अरबी में चली गयी हैं।

आरम्भ में लिपियों का आविष्कार, उच्चारण करते समय मुख, ओष्ठों तथा दाँतों के रूप की नकल उतारकर किया गया था।

मिश्र इत्यादि की सभ्यताएँ तो यहूदियों और अरबी सभ्यताओं से पराजित हो गयीं और उनकी लिपि एवं भाषा विनष्ट हो, हैब्रयू तथा अरबी लिपियों में विलीन हो गयी और सिंधी लिपी ब्राह्मी में तदनन्तर देवानागरी में विलीन हो गयी।

डॉक्टर फतेहसिंह का कहना है कि ब्राह्मी लिपि दोनों दिशाओं में दाहिने से बाईं ओर तथा बाईं से दाहिनी ओर लिखी जाती थी। इसी प्रकार डॉक्टर साहब का यह विचार है कि सिंधी लिपि भी दोनों दिशाओं में लिखी जाती थी।

सिन्धु सभ्यता वैदिक सभ्यता से पहले थी अथवा वैदिक सभ्यता सिन्धु सभ्यता से पहले थी ; यह इस लेख का विषय नहीं। इस पर भी एक बात स्पष्ट है कि मिश्री लिपि, सुमेर तथा मैसापटोमिया की लिपि सिंधी लिपि से मेलजोल खाती है। इसका अर्थ यह निकलता है कि सिंधी लिपि वाले लोग भारत से बाहर के लोग थे। इन्होंने भारत पर आक्रमण किया था और भारत में द्वारिका तक, एक ओर अयोध्या तक तथा दूसरी ओर मैसूर तक, उत्तर में सियालकोट तक इसका प्रभाव हुआ था।

वैदिक भाषा और लिपि का सम्बन्ध हिमालय प्रदेश और गंगा, यमुना, सरस्वती तटवर्ती देशों के साथ घनिष्ट रहा है। इससे यही सिद्ध होता है कि सिन्धु सभ्यता भारत के बाहर से आक्रमण करने वाले लोगों की थी।

कुछ भी हो, इस लेख का सम्बन्ध इस बात से है कि सिंधु लिपि और ब्राह्मी लिपि में कम-से-कम एक सांझापन तो है कि दोनों लिपियाँ दोनों दिशाओं में (दाहिनी से बाईं ओर तथा बाईं ओर से दाहिनी ओर) लिखी जाती थी।

डॉक्टर फतेहसिंह का यह भी मत है कि सिन्धु सभ्यता वालों की मुद्राएं उपनिषदादि कथानकों और विवेचनाओं को प्रकट करती हैं। इस पर हमारा यह कहना है कि ब्राह्मी लिपि और सिन्धु लिपि समकालीन हैं। मिश्री, मैसाप-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

टोमिया तथा सुमेर लिपि भी इसी काल की थीं, परन्तु वेद, ब्राह्मण ग्रन्थ तथा उपनिषद् इन दोनों (ब्राह्मी और सिन्धु) लिपियों से पहले के हैं।

ब्राह्मी लिपि तो भारतीय विद्वानों ने देवनागरी में बदल दी और सिन्धु इत्यादि लिपियाँ सैमेटिक लिपियों में बदल गयीं।

चीनी लिपि स्वतंत्र ही निर्माण हुई प्रतीत होती है। इसका ब्राह्मी लिपि से सम्बन्ध नहीं। परन्तु ग्रीक और लेटिन लिपियाँ तो देवानागरी लिपि का ही अनुकरण करती प्रतीत होती हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि पिछले पांच सहस्र वर्ष से मानव जाति की शारीरिक सामर्थ्य में भारी ह्रास होता आ रहा है। इस कारण लिपियों और भाषा के उच्चारणों का ह्रास भी तभी से आरम्भ हुआ है।

पुरातत्त्व विभाग के लोग तो महाभारत के काल को मानते ही नहीं। परन्तु भारतीय शास्त्र एक स्वर से महाभारत युद्ध के घटने की घोषणा करते हैं और ऐसा प्रतीत होता है कि महाभारत ग्रंथ देवनागरी लिपि में ही लिखा गया था। देवानागरी लिपि के प्रचार के उपरान्त ही पाणिनी का व्याकरण ग्रन्थ लिखा गया। देवनागरी लिपि कम-से-कम पाँच सहस्र वर्ष पुरानी है।

जो कुछ हमने भाषा तथा लिपि के विषय में पूर्व में लिखा है, कतिपय पाश्चात्य विद्वान उसका समर्थन करते हैं। परन्तु कुछ दूसरे लोग भी हैं जो इसका खण्डन करते हैं। इनका खण्डन करने वालों में जैस्पर्सन विण्टर्निट्ज इत्यादि लेखक हैं। उनकी युक्तियाँ यही हैं कि दूसरे पक्ष वालों का समर्थन डार्विन का विकासवाद नहीं करता।

उदाहरण के रूप में जैस्पर्सन अपनी 'Lauguage' नामक पुस्तक की भूमिका में (पृष्ठ १ पर) लिखता है—

A language or a word is no longer taken as something given once for all, but as a result of previous development and at the same time as starting point for subsequent development... suffices to mention such words as 'evolution' and 'Darwinism' to show that linguistic research has in this respect been in full accordance with tendencies observed in many other branches of scientific work during the last hundred years.

Qtd. by Pt. Bhagwaddatta in 'Bhasha ka Itihas'. p. 23.

अर्थात्—यह नहीं माना जाता कि भाषा व पद एक ही बार सदा के लिए दिये गए हैं। ये पूर्व अवस्थाओं के विकसित फल हैं और आने वाली अवस्थाओं के पूर्व रूप हैं···इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि 'विकासवाद' शब्द प्रतीत हो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुके हैं और भाषा के विषय में खोज डार्विन मत का वैसा समर्थन करती है जैसी कि विज्ञान के दूसरे विभाग करते हैं।

इस मतान्ध को यह ज्ञात नहीं कि डार्विन के मत पर उस विद्या के विद्वान भी इतना विश्वास नहीं करते, जितना कि यह विज्ञान से अनभिज्ञ प्रकट कर रहा है।

यही महानुभाव अपनी इसी पुस्तक में पृष्ठ २६३ पर लिखता है—

The structure of modern languages is nearer perfection than that of ancient languages, if we take them as a whole.
(Ibid.)

अर्थात्— यदि भाषाओं को सर्वांग रूप में लिया जाये तो वर्तमान भाषायें प्राचीन भाषाओं की अपेक्षा पूर्णता के अधिक निकट हैं।

इस लेखक के वक्तव्य का किसी यूरोपियन लेखक ने जिसने संस्कृत भाषा पढ़ी हो, समर्थन नहीं किया।

एशियाटिक सोसायटी के सैक्रेटरी जोन्स महोदय लिखते हैं—

The Sanskrit language, whatever be its antiquity, is of a wonderful structure, more perfect than the Greek, more copious than the Latin and more exquisitively refined than either.

यह लेख जोन्स ने सन् १७७६ में दिया था। तब यह अभी राजनीतिक कुचक्र में नहीं फँसा था।

इसका अर्थ है—

संस्कृत भाषा की प्राचीनता कुछ भी क्यों न हो, यह आश्चर्यजनक बनावट वाली है। यह 'ग्रीक' भाषा की अपेक्षा अधिक पूर्ण है, लेटिन की अपेक्षा अधिक विस्तारवाली और दोनों की अपेक्षा अधिक परिमार्जित है।

मैक्समूलर भी यह लिखता है—

They have reduced the rich and powerful idioms of the poets of the Vedas to the meagre and impure jargon of the modern sepoy. L. S. L. Vol. I. p. 36

वैदिक कवियों के प्रबल और स्पष्ट, समृद्ध प्रवाहयुक्त भाषा को (इन वर्तमान भाषाओं ने) सिपाहियों की गँवारू भाषा में परिवर्तित कर दिया है। Mr. J. Vendrys भी अर्वाचीन को प्राचीन पर सुधार नहीं मानता था। वह अपनी पुस्तक 'Language' के पृष्ठ ३४६-३४७ पर लिखता है—

Certainly modern languages such as English and French rejoice in an extreme suppleness ease and flexibility... but can we maintain that the classical tongues like Greek or Latin are in

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ferior to it...It (Greek) is a language whose very essence is god-like. If we have once acquired the taste for it, all other languages seem insipid or harsh after it...The outward form of the Greek language is in itsself a delight to the soul...never has a more beautiful instrument been fashioned to express human thought. (Qtd.) Ibid p. 24

अर्थात—निश्चय ही अंग्रेजी, फ्रेंच आदि वर्तमान भाषायें बहुत कोमल, सरल और लचकदार हैं ।···परन्तु क्या कोई कह सकता है कि ग्रीक अथवा लैटिन सदृश प्राचीन टिकाऊ भाषाएँ इनसे घटिया हैं ? ग्रीक भाषा का निचोड़ देवतुल्य है। यदि एक बार भी इसके प्रति रुचि हो जाए तो दूसरी सब भाषाएँ नीरस और कठोर लगने लगती हैं। ग्रीक भाषा का बाह्य रूप स्वतः ही आत्मा को आनन्द देता है ।···मन के विचार को व्यक्त करने के लिए इससे अधिक सुन्दर उपकरण अभी तक नहीं घढ़ा गया।

जैस्पर्सन इत्यादि जैसे विद्वान अन्य विकासवादी प्राचीन भाषाविदों का खण्डन करते हैं।

अतएव यह निर्विवाद है कि प्राचीन भाषाएँ वर्तमान से श्रेष्ठ थीं।

जहाँ तक लिपि का सम्बन्ध है, प्राचीनतम लिपियाँ अधूरी थीं और उच्चारणों को भली-भाँति व्यक्त नहीं कर सकती थीं। ऐसा प्रतीत होता है कि मिस्र, सुमेर, मैसापटोमिया तथा सिन्धु लिपियाँ, जो चित्रों में उच्चारण अंकित करती थीं, वे अशक्त समझ छोड़ दी गयी। जब तक उनको छोड़ा गया तब तक देवनागरी लिपि का आविष्कार हो चुका था। अरबी तथा यहूदी लिपि भी कई विद्वानों के विचार से देवनागरी लिपि में से ही निकली है; यद्यपि यहूदी इत्यादि सैमेटिक लिपियों ने दक्षिण से वाम दिशा को लिखना पसन्द किया है, देवनागरी ने वाम से दक्षिण दिशा को लिखना ठीक समझा है।

इन दोनों लिपियों से पूर्व ब्राह्मी लिपि दोनों दिशाओं में लिखी जाती थी।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तम अध्याय

गणित

: १ :

गणित विज्ञान सब विज्ञानों का आत्मा है और गणित दिक् तथा काल का सम्बन्ध स्थापित करनेवाला सूत्र है। दिक् का अभिप्राय आकाश (space) है और काल भी आकाश की भांति अलक्षण युक्त तत्त्व है। आकाश और काल को लक्षणमय करने में गणित साधन है।

गणित के तीन मुख्य अंग हैं। अंकगणित (arithmatic) बीज गणित (algebra) और रेखा गणित (geometry)। इन तीनों में भी अंक-गणित ही प्रधान है।

बीज गणित तो अंक गणित का परिवर्तित रूप ही है। विशेष से समानीकरण ही है। इस कारण हम अपने वर्तमान लेख में अंक गणित के विषय में और रेखा गणित के विषय में ही लिखेंगे। इन दोनों विद्याओं के मूल भी वेद में मिलते हैं।

वेद की अपनी बात कहने की एक विशेष शैली है। जो लोग उस शैली को समझ जाते हैं, वे वेद में अंकित ज्ञान को पा जाते हैं। कुछ लोग शब्दों के जाल में फँसे रहते हैं और वेद के गूढ़ ज्ञान तक नहीं पहुँच पाते।

यह निर्विवाद है कि वेद में गणित के मूल सिद्धान्तों का कथन है। हम यहां कुछ मंत्र दे रहे हैं। पूर्ण गणित शास्त्र तो कदाचित् वेद में भी नहीं। मूलभूत बातें ही हैं। वे सब भी हम इस लेख में दे नहीं सकते। पूर्ण ज्ञान के अभाव के कारण और फिर स्थानाभाव के कारण एक-दो बातें ही लिखेंगे।

अंक गणित में ९ अंक ही मुख्य है ओर इसका वेद में वर्णन है।

वेद की शैली को समझने के लिये तत्कालीन स्थिति को समझने की आवश्यकता है। वेद के ज्ञाता ऋषि सामान्य जनता को गणित सिखाने के लिए क्या साधन प्रयुक्त कर सकते थे, यह जानकर ही वेदवाक्यों के अर्थ में गणित का भाव निकाला जा सकता है।

उस समय न तो कलम दवात थी और न स्लेट, पैंसिल, कागज, कापी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यादि थीं। इस कारण जो साधन उपलब्ध थे, उनके द्वारा ही गणित विद्या का ज्ञान कराया जाना समझना चाहिए।

उदाहरण के रूप में निम्न मंत्र हैं—

य एतं देवमेकवृतं वेद।
न द्वितीयो न तृतीयश्चतुर्थो नाप्युच्यते।
न पंचमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते।
नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्चते।

(अथर्व० १३-४-१५, १६, १७, १८)

अर्थात्--(परमात्मा को साधन बना अंकों का ज्ञान कराया गया है)। कहा गया है कि परमात्मा एक है, ऐसा जानो। वह दो नहीं। वह तीन नहीं। वह चार भी नहीं। न पाँच है, न छः हैं और न ही सात है। वह आठ नहीं, वह नौ नहीं और न ही दस है।

परमात्मा को साधन बना अंक १ से १० तक का ज्ञान कराया गया है।

इस प्रकार ये अन्य मंत्र देखिये—

यद्येकवृषोसि सृजारसोऽसि ॥ यदि द्विवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥
यदि त्रिवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ यदि चतुर्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥
यदिपञ्चवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ यदि षड्वृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥
यदि सप्तवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ यद्यष्टवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥
यदि नववृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥ यदि दशवृषोऽसि सृजारसोऽसि ॥
यद्येकादशोऽसि सोऽपोदकोऽसि ॥ (अथर्व० ५-१६-१ से ११ तक)

यहाँ प्राणों को माध्यम बनाकर गिनती का ज्ञान कराया गया है। कहा है कि यदि तू एक ही प्राण वाला है तो निर्बल है। यदि तू दो प्रण वाला है (तो भी निर्बल है) यदि तू तीन वाला है (तो और शक्ति उत्पन्न कर)। यदि तू चार प्राण वाला है (तो और शक्ति उत्पन्न कर)। यदि तू पाँच प्राण वाला है (तो.....) यदि तू छः प्राण वाला है (तो भी और की आवश्यकता है) यदि तू सात प्राण वाला है (तो और आगे चल)। यदि तू आठ प्राण वाला है (तो भी और चाहिए)। यदि तू नौ प्राण वाला है (तो आगे चल)। यदि तू दस प्राण वाला है (तो और अपनी शक्ति को बढ़ा)। यदि तू ग्यारह प्राण धारण करेगा तो तू शक्तिहीन हो जायेगा।

अर्थात् अंक १ से १० तक ही हैं और आगे लौटना है।

आगे की गिनती के विषय में भी कहा है।। देखो, अथर्व वेद ५-१५-१ से ११ तक।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब एक अन्य मन्त्र देखिये—

इमा मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वेका च दश च दश च शतं च सहस्रं च सहस्रं चायुतं चायुतं नियुतं च नियुतं च प्रयुतं चार्बुदं च न्यर्बुदं च समुद्रश्च मध्यं चान्तश्च परार्धश्चैता मेऽअग्नऽइष्टका धेनवः सन्त्वमुत्रामुष्मिंल्लोके ॥

(यजु० १७-२)

हे विद्वान पुरुष ! जैसे मेरे यज्ञ में लगी ईंट ऐसा ही सुख देती है, जैसे दूध देने वाली गौएं; वैसे ही ये एक से दस गुणा और उसका दस गुणा एक सौ। सौ का दस गुणा एक सहस्र। इसका दस गुणा दस सहस्र। इसका दस गुणा एक लाख। इसका दस गुणा दस लाख, इसका दस गुणा कोष (करोड़), इसका दस गुणा दस करोड़। इसका दस गुणा अरब। इसका दस गुणा दस अरब। इसका दस गुणा खरब और फिर निखरब। तदनन्तर पद्म और शंख। तब समुद्र, तब मध्यं, तब अन्त और परार्ध है। विद्वान्, यह मेरी (परमात्मा की) वेद की ईंटें हैं। गौओं के तुल्य हैं। परोक्ष में रखने योग्य अगले जन्म में भी वैसी ही (होंगी)।

इस प्रकार अंक गणित का मूल वेदों में दिया गया है। रेखा गणित के विषय में हम मिस्टर थीबाउट (Thebout) की सुल्व सूक्त पर व्याख्या का एक अंश यहाँ लिख देना चाहते हैं।

यहाँ इतना लिखना ठीक रहेगा कि मिस्टर थीबाउट (Thebout) एक अंग्रेज़ हुआ है। यह वेद को ईश्वरीय ज्ञान नहीं मानता और समझता है कि वेदों की रचना ईसा से आठ सहस्र वर्ष पूर्व हुई है। इस पर भी इसका कथन हमारे दृष्टिकोण पर प्रकाश डालता है। वह इस प्रकार है—

These Sulva Sukta, as we have stated before, dated from the eighth century before Christ. The geometrical theorum that square on the hypotonuste is equal to the squares on the two sides of rectangular triange is ascribed by the Greeks to Pythagoras, but was known to India centuries befare. Pythagoras undoubtedly learned this rule from India.

Qtd. by V. N. Shastri from the Sciences in Vedas p. 40

इसका अर्थ इस प्रकार है—

ये सुल्व सूक्त, जैसा कि हम पूर्व में बता चुके हैं, ईसा पूर्व आठवीं शताब्दी के कहे हुए हैं। रेखा गणित का एक निष्कर्ष है कि एक कर्ण पर वर्ग बराबर होगा एक आयतीय त्रिकोण की दो भुजाओं पर बने वर्गों के। यह यूनानियों से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पाइथागोरस ने पता किया माना जाता है; परन्तु यह भारत को उससे शताब्दियों पूर्व ज्ञात था और निश्चय ही पाइथागोरस ने भारतीयों से सीखा होगा।

अतः हमारा यह कहना है कि गणित शास्त्र में भी भारतीय विद्वान बहुत उन्नति किये हुए थे।

गणित के मूल तत्त्व तो वेदों में ही दिये गए हैं और श्री थीबाउट के कथनानुसार वेद ईसा से आठ हज़ार वर्ष पूर्व के कहे गये ग्रन्थ हैं।

वेदों के उपरान्त गणित के मूल सिद्धान्तों पर बहुत खोज की गयी प्रतीत होती है। यही कारण है कि जिस-जिस विज्ञान के विषय में भारतीयों ने यत्न किया, उसमें उत्कृष्टता प्राप्त की।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

हमारा प्रयोजन इस पुस्तक को लिखने का यह नहीं कि वर्तमान वैज्ञानिकों के प्रयास को कम करके दिखाया जाये। उन्होंने पिछले तीन सौ वर्ष में विपुल प्रयत्न से पृथिवी का स्वरूप ही बदल कर रख दिया है। मनुष्य की सुख-सुविधाओं में भी अपार वृद्धि हुई है।

कुछ लोगों का मत है कि वर्तमान तकनीकी उन्नति से मनुष्य का शारीरिक, मानसिक और नैतिक ह्रास हुआ है। हम यह पुस्तक इस विषय पर प्रकाश डालने के लिये नहीं लिख रहे। इस कारण इस कथन के पक्ष-विपक्ष में कुछ न कहते हुए हम पाश्चात्य वैज्ञानिकों के वर्तमान प्रयास की सराहना ही करते हैं।

इस पर भी हमने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि विज्ञान के मुख्य-मुख्य विषयों में प्राचीन भारतीय वैज्ञानिक किसी प्रकार से भी कम पहुँचे हुए नहीं थे।

हमारे कथन की सत्यता को समझने के लिये विज्ञान की परिभाषा समझनी चाहिये। हमने यह बताया है कि विज्ञान इस जगत् के रहस्यों को जानने के लिये किया गया प्रयास है।

आदि युग से मनुष्य इस बात के समझने में लगा हुआ है कि वह सब, जो यह अपने चारों ओर देखता, सुनता इत्यादि है, क्या है और किसलिये है? इसकी खोज को ही विज्ञान कहते हैं और हमने यह सिद्ध करने का यत्न किया है कि इन प्रश्नों का उत्तर देने में भारतीय वैज्ञानिकों ने बहुत दूर तक सफलता प्राप्त की है।

हम यदि संक्षेप में इस सफलता का दर्शन यहाँ करायें तो वह यह है कि यह जगत् मूलत :—

(१) तीन मूल तत्त्वों द्वारा निर्मित हुआ है। परमात्मा, प्रकृति और जीवात्मा। यह कहा जाता है कि ये तीनों मूल तत्त्व वस्तुतः एक ही हैं। कोई इसे प्रकृति मानता है और कोई इसे परमात्मा मानता है। हमने इस विवाद में जाने का यत्न नहीं किया। यह पुस्तक का विषय नहीं था। इस पर भी इतना बताना अनिवार्य था कि प्रत्यक्ष रूप में जगत् तीन विभिन्न तत्त्वों का सम्मिश्रण है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(२) प्रकृति जड़ है। यह परिणामी है। अर्थात् इसके रूप बदलते रहते हैं। इसी कारण इस जगत् में अनेकानेक भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ दिखायी देते हैं।

(३) प्रकृति के विभिन्न रूपों से प्राणी सुख-दुःख प्राप्त करता है। वह सुख की कामना करता है और दुःख से बचने का यत्न करता है। यह है रहस्य तकनीकि उन्नति का। तकनीकी उन्नति प्रकृति की परिवर्तनशील प्रकृति से मानव सुख-सुविधा प्राप्त करने का प्रयास है। ज्यों-ज्यों पुराने सुखों से मनुष्य ऊबता जाता है, वह नये-नये सुखों की अभिलाषा करता है और फिर उनकी प्राप्ति के लिये तकनीकी प्रगति करता है।

इसी कारण हमने तकनीकी उन्नति को कला का नाम दिया है। यह सुख प्राप्त करने की कला है।

(४) यह सुख प्राप्त करने वाला कौन है? भारतीय विद्वान इसे जीवात्मा कहते हैं। कई इसे विज्ञानात्मा भी कहते हैं। यह विवाद भी इस पुस्तक का विषय नहीं कि जीवात्मा, विज्ञानात्मा और परमात्मा एक हैं अथवा भिन्न-भिन्न हैं।

यह निर्विवाद है कि सांसारिक सुख भोग करने वाला कोई है और वही यह सब तकनीकी उन्नति कर रहा है जिससे वह अपने सुखों में वृद्धि कर सके।

(५) यह भी समस्या है कि प्राचीन भारतीय कैसे विज्ञान के गूढ़ रहस्यों को जान सके थे? मनुष्य ने जितने यन्त्रादि आज निर्माण किये हैं, जिनकी सहायता से यह वर्तमान विज्ञान प्रगति कर रहा प्रतीत होता है, प्राचीन काल में नहीं थ। तब इस सब विज्ञान की प्रगति कैसे हो सकी थी?

यह वस्तुस्थिति है कि विज्ञान के जिस भी विषय पर प्राचीन भारतीयों ने ध्यान दौड़ाया उसमें अद्वितीय सफलता प्राप्त की।

यहाँ एक ही विषय का कुछ उल्लेख कर दें तो हमारे कथन का अभिप्राय समझ में आ जायेगा।

खगोल ज्योतिष के विषय में आज अनेकानेक यन्त्रों और विशाल निरीक्षण भवनों (observatories) के निर्माण होने पर भी क्या वे प्राचीन खगोलशास्त्रियों से कुछ अधिक जान गये हैं? कहना कठिन है।

भारतीयों को ज्ञात था कि एक पृथिवी है, सूर्य है, सौर-मण्डल है, आकाश-गंगा है, अन्तरिक्ष में कई आकाश गंगाएँ चल रही हैं और फिर ब्रह्माण्ड है। इस ब्रह्माण्ड के परे भी कुछ है।

यह तो एक वक्तव्य मात्र है, परन्तु यह कथनात्मक वृत्तान्त गूढ़ वैज्ञानिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय के रूप में भी ज्ञात था। इसका एक उदाहरण दे दें तो बात स्पष्ट हो जायेगी।

प्राचीन खगोल शास्त्रियों ने सूर्य की प्रदक्षिणा करनेवाले ग्रहों का प्रदक्षिणा-काल पृथिवी के प्रदक्षिणा काल के अनुपात में प्रतीत कर लिया था।

वर्तमान खगोलशास्त्रियों ने भी इसका ज्ञान प्राप्त किया है। दोनों की तुलना हम नीचे एक तालिक में दे रहे हैं। इससे पाठकों को ज्ञान हो जायेगा कि भारतीयों के ज्ञान की और ज्ञान प्राप्त करने की विधि कितनी उत्कृष्ट थी। भारतीय आँकड़े सूर्य सिद्धान्त से लिये गए हैं।

नाम ग्रह	सूर्य प्रदक्षिणा काल पृथिवी के प्रदणिक्षा काल की तुलना में (सूर्य सिद्धान्त से)	आधुनिक विज्ञान से
बुद्ध	·२४	.२४
शुक्र	.६१	.६८
पृथिवी	१.००	१.००
मंगल	१.८८	१.८८
बृहस्पति	११.८६	११.८६
शनि	२९.४७	२९.४६

(६) यह कहा जाता है कि भारतीय वैज्ञानिक योगी थे। इस कारण वे उन सब बातों को अन्तर्चक्षुओं से देख और जान जाते थे, जिनको आज के वैज्ञानिक अपने यन्त्रों से देख पाते हैं।

हम इसको पूर्ण सत्य नहीं मानते। वैसे तो हमारा विचार है कि प्रत्येक वैज्ञानिक और लेखक न्यूनाधिक सीमा तक योगी होता है। इस पर भी हमारा यह विचार है कि योग बुद्धि के विकास में एक साधन मात्र है। वास्तव में सत्य का दर्शन बुद्धि द्वारा ही होता है। इस कारण बुद्धि अर्थात् योग सत्य-ज्ञान के प्राप्त करने में एक प्रबल साधन है, परन्तु बुद्धि किसी आधार पर ही कार्य करती

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। वह आधार तो अवलोकन से ही प्राप्त होता है। आधार से हमारा अभिप्राय निरीक्षण (observation) है। बुद्धि निरीक्षण की घटना का कारण जानने में सहायक होती है।

अतएव निरीक्षण (observation) अत्यावश्यक है। यह ठीक है कि जहाँ बुद्धिमान किंचित्मात्र संकेत से ही सत्य को परख लेता है, वहाँ बुद्धिविहीन अथवा मोटी बुद्धि वाला व्यक्ति लाखों रुपये लागत के यन्त्रों के रखने पर भी ठीक कारण और अभिप्राय समझ नहीं सकता।

• • •

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयानुक्रमणिका

अगासिज़ (Agassiz) ७६
अगासिज़ और विकासवाद ८०
अणु निर्माण तथा गुण ४२
अनुमान प्रमाण २०, ७५
अनुमान वर्तमान विज्ञान में २१
अनुमान और भूगर्भ शास्त्र २४
अनुमान की उपादेयता २४
अन्तरिक्ष धूरि (Cosmic dust) ३६
अपरा १०
अम्बर अनन्त है ३४
अवलोकन और दर्शन शास्त्र २७
अष्टधा प्रकृति ६
अशिक्षित बच्चों के इतिहास पर विवेचना १३५-१३७
आकाश गंगा (Galaxy) ५१
आपः और महान् ४१
आइसोटोप्स ५६-६७
आइसोटोप्स से गणना पर सन्देह १०२-१०३
आइसोटोप्स से तिथिकाल १००-१०१
आकृति विज्ञान (Morpholoy) ८३
मनुष्य को ज्ञान १३३
आदि ज्ञान (वैदिक मत) १३४
आपः ३६
आप्त प्रमाण २०
इस्लाम का विज्ञान पर प्रभाव ५८
एक-कोषिका जीव से सृष्टि ७६
ऐन्थ्रोपौलोजी (Antropology) १३१
अंग्रेज शासन द्वारा भारतीय ज्ञान-विज्ञान का विकृतिकरण ८४
कम्प्यूटर और प्राणी में अन्तर ६५-६६
कार्बन डेटिंग ६७-६६
कौस्मिक कण ४५
गुणों की साम्यावस्था ३६
जगत रचना का काल और समय ५०-५३
जगत् का स्वरूप (भारतीय मत) ११३-११४
जगत के मूल तत्त्व १०६-११६
जन्तु के रासायनिक कार्य ६४
जगत में तीन मूल तत्त्वों की सिद्धि ११०
जन्तु के लक्षण (चरक् संहिता) ६४
जन्तु जातियों का आविर्भाव ७६
जन्तु (बिना माता-पिता के) ६८
जन्माद्यस्य यतः २६
जलीय अर्थात् तरल ४८
जीन और जन्तु-जातियाँ ६३

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मा १०
जीवात्मा का शरीर में कार्य ६६
जीवात्मा का ज्ञान अनुमान से २५
जीवात्मा की सिद्धि १२०-१२४
जीवात्मा के लिंग २५
जीवात्मा शरीर के कार्य ६५
जीवित कोषिका में जीन ६२
जैनेटिक्स (Genetics) ८१-८२
जैनेटिक्स की मीमांसा ८७
डार्विन (सिद्धान्त) ७६
डार्विन मत का प्रतिवाद ८६-६३
तत्त्व ५४
तमोगुण प्रधान अहंकार ४४
तन्मात्रा का कार्य ४८-५०
तर्क अर्थात् अनुमान का आधार २६
तीन मूल तत्त्व वेदों में ११५
थ्योरी (Theory) ८२-८३
द्रव्य (पंच महाभूत) ५३-५४
नवीन डार्विन मत ८६
न्यूटन आस्तिकवाद का समर्थक ३०
न्यूटन की खोज का भ्रान्त परिणाम २६
पदार्थ ५३-५६
परमात्मा की सिद्धि ११६-१२०
परिमण्डल और उनका बनना ४६-४७
पर्णांग (Fern) ८५
पार्थिव अर्थात् ठोस पदार्थ ४८
पृथ्वी पर वनस्पतियाँ (रोहिणी नक्षत्र से) ७०
प्रकृति का अनादित्व १०
प्रकृति का भास (नवीन वैज्ञानिकों को) १२०
प्रकृति की सिद्धि १२४-१२६
प्रकृति के परिणामों से जगत्-रचना १११-११२
प्रकृति विषयक अरस्तु का मत १३
प्रत्यक्ष प्रमाण २०
प्रमा १६
प्रमाण की परिभाषा १६
प्रमाण के तीन प्रकार १६
प्रमाण न्याय दर्शन में २३
प्रमाण से सिद्धि २०
प्राचीन ज्योतिष विद्या ११५
प्राण साम्यावस्था के भंग होने में कारण ४०
प्राणी विज्ञान प्राचीन मध्य एशिया मत ८६
प्राणी शास्त्र भारतीय विवचना ८७-८८
प्राणी सृष्टि (पाश्चात्य मत) ५७-६६
प्राणी सृष्टि पृथक्-पृथक् ७६
प्राणी सृष्टि भारतीय मत ६६
प्राणी सृष्टि (मिस्र युनानी मत) ५८-५६
प्राणी सृष्टि (वर्तमान विज्ञान की साक्षी) ७१-७२
प्राणी सृष्टि (शरीर रसायन शास्त्रियों का मत) ६०-३२
बाइबल का विज्ञान पर प्रभाव ८४
ब्रह्माण्ड (Universe) ५०
ब्रह्माण्ड फैल रहा है ५१
ब्राह्मी लिपि और देवनागरी १४६
भाषा (भारतीय मत) १४०
भाषा के आविर्भाव में पाश्चात्य वैज्ञानिकों का असफल प्रयत्न १४२-१४४

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा में संस्कृत ज्ञाताओं का मत १४३
भाषा लिपि के विषय में नास्तिक मत १४६
भूगर्भ शास्त्र अस्पष्ट विज्ञान ९४-९७
भूगर्भ शास्त्र और अनुमान २४
मण्डल मत की समीक्षा ८६
मनुष्य (भारतीय मत) १३३
मनुष्य सृष्टि (भारतीय मत) १०४-१०८
मनवन्तर की अवधि ७८
महत् में गुणों की अवस्था ४०
महत् से अहंकार ४२-४५
मानव विकास पर सन्देह १३२
मूल तत्त्वों की सिद्धि ११६-१२०
योग में स्वाध्याय २७
योग्यों का संघर्ष में बचना (Survival of the fittest) ८५
रजोगुण प्रधान अहंकार ४४
रसायन शास्त्र प्राथमिक नियम ४६-४७
रासायनिक तत्त्व (chemical elements) ५५-५६
रासायनिक पदार्थ प्राणी नहीं ७३
रूप परिवर्तन क्रिया (Poly-morphism) ८६
लाक्षणिक द्रव्य (काल दिक् मन) ५४
लिपि (Script) का विकास १४४-१४५
लिपि में भारतीय मत १४४
वनस्पतियों का पृथ्वी पर आने में सोम और सुपर्ण का योगदान ७१
वनस्पतियों का बीज दूसरे नक्षत्रों से ७०-७३
वनस्पतियों का बीज रूप में आना ७०
वर्तमान विज्ञान और प्राचीन भारतीय विज्ञान में तुलना ४५-५०
वर्तमान वैज्ञानिकों का डार्विन मत पर सन्देह ७७-७८
वायवी अर्थात् गैसीय ४८
विकासवाद ७५-८७
विकासवाद अनीश्वरवाद ७७
विकासवाद की विवेचना ८७-१०२
विशुद्ध विज्ञान (Pure science) १७
विज्ञान और योग का सम्बन्ध १५५
विज्ञान और विज्ञान का अभिप्राय ९-११
विज्ञान का भारतीय अर्थ ९
विज्ञान की परिभाषा १५३
विज्ञान भगवद्गीता में ९
वेद में शक्ति (energy) का उल्लेख १३८
वेदों में गणित १४९-१५२
वैज्ञानिकों के गुण ३१
वैज्ञानिक खोज का लक्ष्य २८
व्योम (Space) ५०
सत्त्वगुण प्रधान अहंकार ४४
सत्त्व रजस् तमस् ३८, ३९
साइंस (ज्ञान-विज्ञान) और मीमांसा (Logic) २३
साइंस की परिभाषा १२-१३
सिन्धु सभ्यता की लिपि १४५
सूक्ष्म पंचमहाभूत ४७
सूक्ष्म से स्थूल महाभूत ४७-५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सृष्टि रचना स्थान चमस्वत् ३५
स्वाभाविक चुनाव (Natural selection) ८५
हिरण्यगर्भ ५२
हिरण्यगर्भ टूट रहे हैं ३२, ३३, ३७
ह्रस्व यथा दीर्घ अणु ४३
ज्ञान (भारतीय मत) १३९
ज्ञान और भाषा का सम्बन्ध १४८
ज्ञान की परिभाषा ९, ११
ज्ञान, भाषा और लिपि १३०-१४८

Central Library
167980
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
081
167980

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL K... LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

वर्ग संख्या R 089.9143 GUR — V आगत संख्या 167980

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri



श्री गुरूदत्त

(1894 - 1989)

शिक्षा : एम. एस-सी.

प्रथम उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर" से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रूके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठिभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरूदत्त की ही विशेषता है।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास पढ़ना आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता।

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी.चैम्बर्स, 10/54, देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली : **110005**

फोन : 23553624, 23551344, 09213527666

ई-मेल : hindisahitya@rediffmail.com

81-88388-92-0

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar